# नेटवर्किंग के सिद्धांत

## आलोचनात्मक इंटरनेट संस्कृति : कुछ अवधारणाएँ

गियर्ट लोविंक

इस लेख में मैं तीन अवधारणाओं पर अपना ध्यान केंद्रित करूँगा : जनता, नेटवर्क और संस्कृति का आपसी संबंध; सहयोग और मुक्त सहयोग की कला, और अन्त में हम संगठित नेटवर्क सिद्धांत के कुछ तत्वों का जायज़ा लेंगे।

### 1. जनता, नेटवर्क तथा संस्कृति

जॉर्ज यूडिस अपने अध्ययन- 'दि एक्सपीडिएन्सी ऑफ़ कल्चर' में कहते हैं कि संस्कृति के बारे में हमारी विचार-यात्रा 'संदेह' और 'अंतर्निहित पतन' के ख़तरे से गुज़र कर तथाकथित उत्पादकता के दृष्टिकोण तक आ चुकी है। युडिस संस्कृति को पण्य वस्तु के बजाय संसाधन के रूप में देखने का आग्रह करते हैं। संस्कृति एक सक्रिय और नवाचारोन्मुख क्षेत्र है जो यहाँ-वहाँ बिखरी शक्तियों की लामबंदी करने की क्षमता रखता है। यह बात ख़ास तौर पर इंटरनेट संस्कृति पर लागू होती है। 90 के दशक के आख़िर में डॉट कॉम मॉडल की नाकामयाबी से यह बात ज़ाहिर हो जाती है कि ऑनलाइन संप्रेषण को वेब पेज हिट्स में मापकर उसके व्यावसायीकरण का रवैया कितना ग़लत था। सामाजिक गतिविधियों को व्यावसायिक आँकड़ेबाज़ी में तब्दील करने की कोशिश पूरी तरह नाकाम रही। दरअसल इसी बिन्दु पर युडिस की संस्कृति को संसाधन मानने वाली बात सैद्धांतिक अहमियत ग्रहण करती है। डार्विनवादी मॉडल, जिसके तहत यह माना जाता था कि सबसे शक्तिशाली व्यक्ति, विचार या संस्कृति ही जीवित रहती है, जिसका समर्थन उदारवादी फ़र्स्ट मूवर्स ने भी किया था, के बरख़िलाफ़ संस्कृति को संसाधन की तरह देखने का विचार विविधता की ज़मीन से ख़ुराक पाता है। संस्कृति एकाधिकार की स्थिति में नहीं फल-फूल सकती। नेट संस्कृति भी कोई आसमान से नहीं टपकी है और दूसरे संसाधनों की तरह इसका विकास भी एक सतत नीति पर निर्भर करता है। इसके लिए थोड़ी स्वायत्ता चाहिए, थोड़ी साँस लेने की जगह भी ताकि नेट के प्रयोक्ता सामूहिक या व्यक्तिगत धरातल पर अपने आचार को सँवार सकें। यहाँ सिर्फ़ अधिरचना और पहुँच-भर से बात नहीं बनने वाली। संस्कृति विलास की चीज़ नहीं है। न कोई ऐसी चीज़ है जिसका स्थानीय और पर्यटक लोग 'उपभोग' कर सकें। बल्कि यह एक महत्त्वपूर्ण रणनीतिक संपत्ति है। इस अर्थ में रिचर्ड फ़्लोरिडा जिस 'रचनात्मक वर्ग' के सिद्धांत की बात करते हैं वह ठीक

ही जान पड़ता है। सवाल यह है कि 'रचनात्मक उद्योगों' की नीतियों का शोर किस हद तक पश्चिमी श्रम बाज़ार की संरचनात्मक समस्याओं को ढँकने का काम करता है। संस्कृति उद्योग कारगर नहीं है। हद से हद यह कुछ अस्थिर और अटपटे क़िस्म के रोज़गार पैदा कर रही है जो मुख्यत: स्वैच्छिक श्रम के आधार पर चल रहे हैं। रचनात्मक उद्योगों की बात करते हुए हमें इस अनस्थिर कार्य-दशा की बात करनी ही होगी: क्योंकि यहाँ न तो कोई औपचारिक क़रार है, न कार्य-समय में लोच, न कोई बीमा, और वेतन भी कम ही है। यदि रचनात्मक उद्योगों को एक अवधारणा के रूप में सार्थक होना है और उसे नौवें दशक की 'नयी अर्थव्यवस्था' के नीतिगत संस्करण बनने से बचना है तो उसे स्थायित्व के मसले से उलझना होगा। वर्ना हमें डिजिटल तकनीक से पैदा हुई नयी परिस्थितियों के बारे में कोई बात नहीं करनी चाहिए। इसके बजाय बेहतर यह होगा कि हम संस्थाओं के मौजूदा रूपों के भीतर महज़ एक पुनर्व्यवस्था की ही बात करें और यह कहना छोड़ दें कि उद्योग के क्षेत्र में कोई नयी संरचना जगह ले रही है।

इंटरनेट संस्कृति नित नया आकार लेती संस्कृति है। यहाँ कोई ऊपर-नीचे जाता रैखिक विकास या वृद्धि मौजूद नहीं है। इसके बारे में अगर कोई बात पक्के तौर पर कही जा सकती है तो वह है ग़ैर-पश्चिमी देशों के प्रयोक्ताओं में तुलनात्मक और निरपेक्ष दोनों रूपों में क्रमिक वृद्धि। पश्चिम के इंटरनेट विशेषज्ञ अभी तक इस 'सांस्कृतिक करवट' को समझ नहीं पाए हैं कि नेट संस्कृति में अंग्रेज़ी की अहमियत घटती जा रही है और जापान या चीन जैसे देशों में 'इंट्रानेट' उसका स्थान लेती जा रही है। कुछ लोग वाणिज्यवाद के उत्थान के बाद से नेट को एक माध्यम के रूप में धीरे-धीरे बीतती हुई चीज़ मानते हैं। दूसरी तरफ़, चिर आशावादी क़िस्म के लोग इंटरनेट को एक पवित्र चीज़ की तरह पेश करते हैं - एक ऐसी चीज़ जो अंतत: मनुष्य की तमाम संवेदनाओं, इच्छाओं को आपस में जोड़ती है। बीच में कुछ (मुझ-जैसे) रैडिकल व्यवहारवादी भी हैं जो नए मीडिया को दुबारा गढ़ती विकी, पी-टू-पी और वेब्लॉग्स जैसे नवाचारों के विकास और ग़लत-सही इस्तेमाल और आदान-प्रदान पर ज़ोर देते हैं। नेट के 'आलोचना शास्त्र' का दुश्मन नम्बर एक अभी भी पीआर सेल्स के वही आँकड़े हैं। इस सूची में नए मीडिया के क्षेत्र में उभरे नए सिद्धांत और शैक्षणिक सामग्री का धार्मिक राग भी शामिल है।

नेट का संस्कृतिकरण हर पल जारी परिघटना है और ऑफ़लाइन अभिजनों तथा टेक-धुरंधरों से लेकर मीडिया कार्यकर्ताओं तक, सभी इस धीमी लेकिन स्थिर प्रक्रिया को एक निराशा भाव से देखते हैं। जैसा कि युडिस कहते हैं संस्कृतिकरण कोई मासूम प्रक्रिया नहीं है बल्कि यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो 'आबादी के प्रबंधन और उसकी एक निश्चित लामबंदी' के साथ पैदा होती है। और इस बात को महज़ नियंत्रण के अर्थ में नहीं समझा जा सकता। युडिस 'भिन्न समुदायों' को लोकतांत्रिक प्रक्रिया में शामिल करना आवश्यक और वांछनीय मानते हैं। युडिस जिसे 'संस्कृति की अनिवार्यता' कहते हैं, वह हमारे मौजूदा सामाजिक जीवन की अभिनयात्मकता के मूल में है।

सूचना प्रौद्योगिकी के वृहत्तर संदर्भ में संस्कृतिकरण को पूर्वानुमान, या क्षण के रूप में पश्चिम में इंजीनियर-वर्ग के दीर्घकालीन पतन के जवाब में अख़्तियार किए गए एक वक़्ती पैंतरे के रूप में भी देखा जा सकता है। कंप्यूटर वैज्ञानिकों को आविष्कारकों के रूप में जो प्रभुत्वकारी हैसियत प्राप्त है वो आसानी से समझ में आती है लेकिन यह स्थिति हमेशा के लिए नहीं रहनी थी। हम जिस सांस्कृतिक करवट की बात कर रहे हैं वह ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों जैसे - मनुष्य और कंप्यूटर की अन्त:क्रिया, उपयोगिता तथा मीडिया अध्ययन का परिणाम भी है। सूचना तकनीकी के अनेक कार्यों को भारत जैसे देशों को ठेके पर दिए जाने (आउटसोर्सिंग) से इसी बात की तस्दीक़ होती है। आज आख़िरकार वह आर्थिक स्थिति आ चुकी है जहाँ टेक्नोसंस्कृति की आर्थिक संभावनाओं पर ध्यान देना ज़रूरी हो गया है। शैक्षिक क्षेत्र में भी यह बात तेज़ी से महसूस की जा रही है कि 'सॉफ़्ट ज्ञान' के लिए कठोर सूचना प्रौद्योगिकी श्रमिक दल में जगह बनायी जानी चाहिए।। हाल-फ़िलहाल तक प्रोग्रामर और मल्टी-मीडिया

डिज़ाइनर किसी दूसरे ग्रह से आए प्राणी मालूम पड़ते थे। इस क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं और पुरुषों की लैंगिक पहचान का आधार – 'पुरुष कोडरों' और 'महिला डिज़ाइनरों' के बीच एक आर्थिक विभाजन था। इस बात को हम सूचना तकनीकी बनाम मार्केटिंग के तौर पर समझ सकते हैं। आज सूचना तकनीकी की आउटसोर्सिंग इस रफ़्तार से हो रही है कि पुरुष 'गीक' कोडर का दबदबा अब उतना स्वाभाविक नहीं रह गया है और एक 'सांस्कृतिक मिश्रण' की स्थिति पैदा होती जा रही है।

इस वैश्विक रूपान्तरण की वजह से 'एचवीए' जैसे संस्थानों में इंटरैक्टिव मीडिया, मल्टीमीडिया डिज़ाइन और संचार पाठ्यक्रम जैसी चीज़ें शुरू की गयी हैं। अभी तक शैक्षणिक क्षेत्र नेटवर्क तकनीक के साथ तादात्म्य बिठाने में कुछ ढीला रहा है। ज्ञान के मौजूदा अनुशासनों के बीच जो सांस्थानिक टकराव है, उसके चलते उच्च शिक्षा में रचनात्मकता का अभाव है। दुनिया-भर के विश्वविद्यालय आज माइक्रोसॉफ्ट की गिरफ़्त में हैं। मुक्त और खुले सॉफ़्टवेयर अभी भी हाशिए की, बल्कि जुर्म जैसी-ही चीज़ हैं। एक समय इंटरनेट के विकास में विश्वविद्यालय के अकादमिक जगत की भूमिका अग्रणी थी लेकिन आज यह अकादमिक जगत महज़ यहाँ-वहाँ कम्प्यूटर गेम्स की तकनीक को पकड़ने तक ही सीमित रह गया है।

2005 की बात करें तो मोबाइल उपकरणों का अध्ययन अभी शैशवावस्था में है। इस संस्कृतिकरण की प्रक्रिया का एक लक्ष्य यह भी होगा की नेट के प्रयोक्ता तकनीक के विभिन्न रूपों पर अपने इस्तेमाल और उसके साथ अपने अंतर्व्यवहार से उसके आगामी विकास पर कैसा असर डालते हैं। नेटवर्क-संस्कृति तब पैदा होती है जब सॉफ़्टवेयर के निर्धारित ढाँचे के तहत मानवीय संबंधों की गतिमयता

*Figure 1.2 - The Emerging Media Ecosystem*

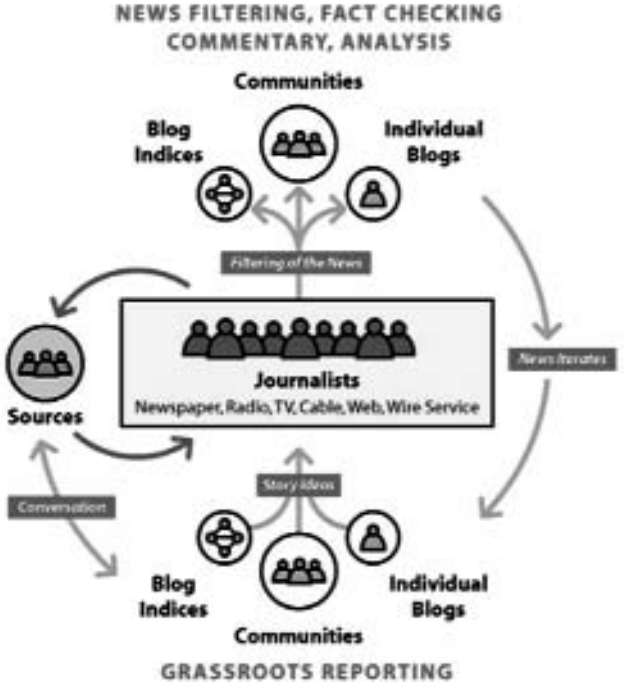


*Source: Based on "Blogosphere: the emerging Media Ecosystem" by John Hiler, Microcontent News*

एक उत्पादक संघर्ष को जन्म देती है। और इन नेटवर्कों के बीच जो सामाजिक गतिकी पैदा होती है वह 'कूड़ा' नहीं सारतत्त्व है। नेटवर्कों का मक़सद डेटा का स्थानान्तरण नहीं बल्कि सिस्टम के बीच संघर्ष है।

अब यह कहने से बात नहीं बनेगी कि हर संस्कृति का अपना एक मूल्य होता है। यह बात आज के इंटरनेट शोधार्थियों और उनके बीच बेहद लोकप्रिय एथ्नोग्राफ़िक एप्रोच पर भी उतनी ही लागू होती है। आज इंटरनेट हाशिए की परिघटना नहीं है और न कोई अजायबघर की चीज़ है, जिसका अनजाने आदिवासी समुदायों की तरह अध्ययन किया जाए। नेट संस्कृति की दैनिकी का अध्ययन काफ़ी फ़ायदेमंद तो साबित हुआ है लेकिन आज के दौर में उससे कोई व्यापक ख़ाका नहीं उभरता है। उपयोक्ता केन्द्रित प्रविधियों में अधिरचना, सॉफ़्टवेयर आमुख और सांगठनिक बदलावों को अनदेखा किया जाता है। उपभोक्ता इलेक्ट्रॉनिक्स के बाज़ार में आए बदलावों और बौद्धिक सम्पदा क़ानूनों को लेकर उभर रहे वैश्विक टकराव को इन तरीक़ों में कोई जगह नहीं दी जा रही है। वास्तव में, आज जो चल रहा है उसे 'उपयोक्ताओं' के सूक्ष्म जगत तथा समाज के 'स्थूल' के बीच का फ़र्क़ ख़त्म होना कहा जा सकता है। बात स्पष्ट है कि नेट संस्कृतियों की पड़ताल महज़ 'आभासी समुदाय' के अध्ययन पर ही ख़त्म नहीं हो जानी चाहिए।

आज हम वक़्त के उस कगार पर पहुँच गए हैं जहाँ हमें नेटवर्क सिद्धांतों का निर्माण करने वाले तत्त्वों को उत्तर-आधुनिक सांस्कृतिक अध्ययन और जातीयोन्मुख सामाजिक विज्ञानों के दायरे के बाहर खोजना चाहिए। लेव मानोविच के शब्दों में कहें तो आधुनिक मीडिया अध्ययन को आज जो चीज़ दरकार है वह है 'नए मीडिया' की भाषा' न कि विज्ञान केन्द्रित कोई 'स्थूल नेटवर्क सिद्धांत'। वैज्ञानिकों के लिए यह एक अन्तर्दृष्टि हो सकती है कि नेटवर्क कोई बिखरी हुई चीज़ नहीं होती बल्कि उनके पीछे एक समूची संरचना होती है लेकिन इंटरनेट के आलोचनात्मक शोधार्थिओं को इससे चमत्कृत नहीं होना चाहिए।

अब ज़रा देखें कि मल्टीट्यूड या 'जनसमुद्र' के सिद्धांतकार उपयोक्ताओं और नेटवर्क की धारणाओं को किस तरह देखते हैं। यहाँ 'मल्टीट्यूड' को 'जनता' के विकल्प के रूप में देखा जाता है, क्यों 'जनता' पद राष्ट्र-राज्य की परियोजना से जुड़ा है। जिस तरह सांस्कृतिक अध्ययनों में अक्रिय/अमूर्त उपभोक्ताओं और दर्शकों की जगह 'प्रोज़्यूमर' (उत्पादक + उपभोक्ता = उत्भोक्ता) और उपयोक्ताओं ने ले ली है उसी तरह मल्टीट्यूड में 'सर्वहारा' एवं वर्ग की समरस धारणा पर ज़ोर देने के बजाय श्रम की विविधता का अहसास समाहित है। मिशेल हार्ट और अन्तोनियो नेग्री मल्टीट्यूड की इस अवधारणा का इस्तेमाल वैश्विक दुनिया की सामाजिक संरचना को उजागर करने के लिए करते हैं।

अपनी पहले की पुस्तक *एम्पायर* (2000) में हार्ट और नेग्री ने नेटवर्कों के बारे में शायद ही कोई बात की थी जबकि मल्टीट्यूड (2004) तक आते-आते नेटवर्क आधारित संगठन की बात प्रमुख हो चलती है। हार्ट और नेग्री के अनुसार 'मल्टीट्यूड को एक खुले और बाहर की ओर फैलते नेटवर्क के रूप में देखा जाना चाहिए जिसके भीतर मतभेदों को आज़ादी और बराबरी के स्तर पर व्यक्त किया जा सकता है, यह एक ऐसा नेटवर्क है जहाँ हमें एक दूसरे से संपर्क साधने और रू-ब-रू होने तथा एक-दूसरे के साथ मिलकर काम करने का मौक़ा मिलता है।' हार्ट और नेग्री अच्छे-बुरे के पचड़े में नहीं फँसते। उनके अनुसार आज नेटवर्क हर कहीं मौजूद हैं और इस सूची में सैन्य-संगठन, सामाजिक आंदोलन, व्यावसायिक संगठन, उत्प्रवासन के ढर्रे, संचार-तंत्र, शारीरिक संरचनाएँ, भाषिक संबंध, मनतंत्री प्रसारक और यहाँ तक कि व्यक्तिगत संबंध भी शामिल हैं।

11 सितम्बर, 2001 के बाद दुश्मन कोई एक सम्प्रभु राज्य नहीं बल्कि नेटवर्क है। दूसरे शब्दों में, शत्रु का चोला बदल गया है। आतंकवाद विरोधी युद्ध के योजनाकारों के अनुसार इंटरनेट नेटवर्क-संपन्न

शत्रु की चुनौतियों का सामना करने में सक्षम नहीं है।

मल्टीट्यूड के लेखक बिखरे हुए नेटवर्कों को एक आम सूरतेहाल बताते हैं। बक़ौल हार्ट एवं नेग्री, 'ऐसा नहीं है कि पहले नेटवर्क नहीं हुआ करते थे या हमारे दिमाग़ की बनावट बदल गयी है। हुआ यह है कि नेटवर्क दुनिया को समझने और उसमें जीने का तरीक़ा बन गया है। अब हम दुनिया को कैसे समझते और देखते हैं यह सब नेटवर्कों से तय होने लगा है। नेटवर्कों के बारे में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे सहयोग और संवाद पर आधारित ऐसे रूप हैं जो अभौतिक उत्पादन के सिद्धांत से संचालित होते हैं। 'इस समान संगठन का उभरना-पनपना और अपने प्रभुत्व का आग्रह करना ही अब युगधर्म है।' सत्ता के तमाम पहलू आज संजालित हैं, क्योंकि बड़े-बड़े संगठनों में कर्मचारियों पर नज़र रखना, और उनका प्रबंधन करना दुष्कर साबित हो गया है। इसके विपरीत मुक्त और वितरित कार्य-संबधों में ज़्यादा लोच संभव है।

हार्ट और नेग्री लिखते हैं, 'नेटवर्क का मुक़ाबला नेटवर्क ही कर सकता है'। लेकिन युद्ध जीतने के लिए नेटवर्क बहुत कारगर औज़ार नहीं है। उनके अनुसार यह छापामार युद्ध की अगली स्वाभाविक कड़ी है। 'नेटवर्क पर आधारित संघर्ष अनुशासन पर निर्भर नहीं करता। रचनात्मकता, संचार और स्वयं संगठित सहयोग इसके बुनियादी आधार हैं।' इसका ध्यान शत्रु पर नहीं बल्कि अंदर की ओर होता है। हार्ट और नेग्री की यह बात सही ही है कि संगठन धीरे-धीरे साधन नहीं बल्कि साध्य बनने लगते हैं। सशस्त्र संघर्ष और आत्मघाती हमले जैसी एकल और तन्हा कार्रवाइयाँ नेटवर्क के रहते लगभग नामुमकिन हैं।

नेटवर्क संघर्षों के बारे में सबसे ख़ास बात यह है कि वे संगठनों के समस्त समकालीन रूपों यानी राजनीतिक दल और उसके लेनिनवादी मॉडल से लेकर जन सेना, यहाँ तक कि सामाजिक आंदोलनों और उसके अवशेषी रूपों – ग़ैरसरकारी संगठनों तक – पर सवाल खड़ा कर देते हैं। नेटवर्क सत्ता को पूरी तरह ख़त्म तो नहीं करते परन्तु उसे कमज़ोर अवश्य करते हैं, और निर्णय प्रक्रिया लगभग असंभव हो जाती है। नेटवर्क सत्ता और प्रतिनिधित्व को विखंडित कर देते हैं और कोई भी स्वयंभू अवाँगार्द समूह उसे औज़ार नहीं बना सकता। वास्तव में नेटवर्क बहुत सारी घटनाओं को तो आकार ही नहीं लेने देते। भले ही यह सही रणनीति न लगे पर इस सच्चाई से इंकार नहीं किया जा सकता कि नेटवर्क इतिहास की त्रासद घटनाओं को दोहराए जाने से रोकते हैं। असफल संघर्षों और संगठित आदर्शवाद की कहानियाँ कई बार जातीय सफ़ाए पर जाकर ख़त्म हुई हैं। इतिहास में इस बात के कई उदाहरण देखे जा सकते हैं। लेकिन नेटवर्क सिर्फ़ इतिहास का ही अंत नहीं करते बल्कि स्वयं उनमें भी एक राजनीति निहित है।

ऐसे 'आभासी बुद्धिजीवी' कहाँ हैं जिनकी कार्यशैली में ये तकनीकी स्थितियाँ अन्तर्भूत हो चुकी हैं। आज़ादीपसंद मूल्यों को वे किस हद तक अपने अंदर पचा पाएँगे? बर्लिन की दीवार के गिरने से लेकर डॉट कॉम गुब्बारे के फूटने तक की घटनाओं को पचाने में उन्हें कितना वक़्त लगेगा? मुक्त सॉफ़्टवेयर और खुले स्रोत से संबंधित बहस-मुबाहिसे को वे किस हद तक समझ पाएँगे। कंप्यूटर के जटिल और विस्तृत नेटवर्क की जितनी पैठ अकादमिक जगत तक हो चुकी है इसके चलते इन मुद्दों को और नहीं टाला जा सकता। ब्राउज़र, ऑपरेटिंग सिस्टम और सर्च इंजन आज कोई निरपेक्ष औज़ार नहीं रह गए हैं बल्कि वे अपने साथ सामाजिक-सांस्कृतिक और सौंदर्य के प्रारूपों का एक पूरा कार्यक्रम लेकर आते हैं। नेटवर्कों के महत्त्व को दर्शाना नेटवर्किंग का एक अहम मक़सद बन चुका है। नेटवर्क के स्थापत्य को समझना इसी सिक्के का दूसरा पहलू है। नये मीडिया ऐक्टिविस्टों, कलाकारों और सिद्धांतकारों की ज़िम्मेदारी बन गयी है कि वे आगे आकर कमान सँभाले और इस क्षेत्र की गहराई में जाकर हालात-ए-हाज़रा पर ग़ौर करके नेटवर्क और श्रोता-समूह के बीच मध्यस्थ की भूमिका अदा करें।

अलेक्स गैलोवे अपनी पुस्तक (*प्रोटोकाल, हाउ कंट्रोल एग्ज़िस्ट्स आफ़्टर डिसेंट्रलाइज़ेशन*) में नेटवर्क

के सिद्धांत को एक क़दम आगे ले जाते हैं। गैलोवे हार्ट और नेग्री की ज़मीन से शुरुआत करते हैं और नेटवर्कों की कार्यप्रणाली की गहरी जानकारी के आधार पर प्रोटोकॉल सिद्धांत खड़ा करते हैं। गैलोवे के अनुसार हमें इस मिथक से मुक्ति पा लेनी चाहिए कि इंटरनेट एक अराजक चीज़ है। आचार नीति (प्रोटोकॉल) दो परस्पर विरोधी मशीनों पर टिका है 'एक मशीन नियंत्रण को कई स्वायत्त दायरों में बिखरा देती है और दूसरी मशीन नियंत्रण को बहुत सख़्त परिभाषाओं की शृंखलाबद्ध श्रेणियों में डाल देती है।' नेटवर्क के चलते सत्ता के पुराने रूप ढह जाते हैं। और इसके साथ ही पहले की सोपानिकता तथा नौकरशाही भी ख़त्म हो जाती है लेकिन नेटवर्क एक नए निज़ाम की तामीर भी करते हैं। इसी को गाइल्स डेल्यूज़ 'कन्ट्रोल सोसायटी' कहते हैं। नेटवर्क से बाहर और भीतर की स्थिर सीमाएँ लगातार ढहती रहती हैं। बाहर से देखने पर नेटवर्क लोगों के अन्दर आज़ादी का एहसास पैदा करते हैं लेकिन भीतर ही भीतर रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में नियंत्रण हेतु आदर्श मशीन भी बन जाते हैं।

सौ बातों की एक बात : संघर्ष से आज़ाद पूंजीवाद को नेटवर्कों की ज़रूरत नहीं होती। उसे गैलोवे के प्रोटोकॉल की भी दरकार नहीं। यहाँ महज़ डेटा का सुगम स्थानांतरण होना चाहिए (वह भी उपयोक्ता और सर्वर के बीच, और हाँ, उपयोक्ता से उपयोक्ता के बीच तो हरगिज़ नहीं अर्थात् पी-टू-पी नहीं)। यह नेटवर्क के बिना वितरण करने की चाहत है। आज की नेटवर्किंग की ख़ासियत ख़ुद 'नॉटवर्किंग' ही है। अगर लाइन पर दिक़्क़त पैदा न हो रही हो तो राउटिंग की कोई ज़रूरत महसूस नहीं होती। स्पैम, वायरस और गोपनीयता या पहचान की चोरी तकनीकी उत्कृष्टता की राह में होने वाली अप्रत्याशित ग़लतियाँ नहीं है। उन्हें बीते हुए कल के नेटवर्क स्थापत्य के संवैधानिक तत्त्वों से जोड़कर देखना होगा। नेटवर्क से अनौपचारिकता का स्तर बढ़ता है और गप-शप, ग़लतफ़हमियाँ और दूसरी तमाम मानवीय भूलों से शोर भी पैदा होता है। प्रोटोकॉल के सिद्धांत को इस मामले में पश्चगामी कहा जा सकता है क्योंकि उसमें सिर्फ़ यह बताया गया है कि पिछले दशकों के दौरान नेटवर्कों को कैसे तैयार किया गया था। लेकिन नये मीडिया के अनेक सिद्धांतों की तरह इस सिद्धांत में भी खुलेपन, स्वनियमन आदि के समर्थकों और 9/11 के बाद उभरे नव-पुरातनपंथियों के संभावित टकराव पर विचार नहीं किया गया है। उल्लेखनीय है कि 9/11 के बाद आतंकवाद विरोधी युद्ध और सामरिक चर्चा के नाम पर प्रोटोकॉल को दरकिनार कर दिया गया था।

मेरे हाल के काम का एक प्रमुख मसला यह रहा है कि नेटवर्क आम सहमति की संस्कृति से क्षुब्ध लोगों से किस तरह पेश आते हैं? 9/11 की घटना के बाद वैश्विक स्तर पर जो सुरक्षा इंतज़ाम किए गए हैं उन्हें देखते हुए यह कोई अजीब सवाल नहीं है। असल में बात यह है कि 'सच्चे आस्तिक' का युग ख़त्म हो चुका है। जो लोग किसी पवित्र उद्देश्य के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग करना चाहते हैं उनके लिए नेटवर्क बाधा बन गए हैं। प्रचारबाज़ी के लिए नेटवर्कों का इस्तेमाल तो किया जा सकता है लेकिन इसमें पुराने तर्ज़ के प्रसारण मीडिया ज़्यादा कारगर हैं। एक सदी पहले तक किसी भी तरह के आन्दोलन में हताश और कुंठित लोग काफ़ी तादाद में पाए जाते थे। आज ऐसे लोग लगभग नदारद हो गए हैं या कहें कि उनकी बात सुनी नहीं जा रही है। आज के इन कुंठित आंदोलनकारियों में मौजूदा मशीनरी के तकनीकी ज्ञान से लैस विखंडनवादी लोग शामिल हैं। हॉफ़र के अनुसार कुंठा एक सच्चे आस्तिक को जन्म दे सकती है लेकिन एक 'कुंठित दिमाग़' ऑनलाइन संवाद में अच्छा सहभागी नहीं बन सकता।

नेटवर्क के केन्द्र में असंतोष नहीं बल्कि चाहत राज करती है। आज की शहादत को नकारने का माहौल इन कुंठित आंदोलनकारियों को नेटवर्कों के हाशिए पर ठेल देता है। दूसरे शब्दों में कहें तो आज के नेटवर्क उन्हें नेटवर्कों की मुख्यधारा से नहीं जुड़ने देते और यहाँ से सवाल पैदा होता है नेटवर्क से 'बाहर' कर दिए जाने वाले लोगों का। यानी सोचने की बात यह है कि अगर समूची सत्ता नेटवर्कों के

ज़रिए काम कर रही हो तो उन लोगों का क्या होता है जिन्हें नेटवर्क समाज के ख़ारिज और फ़ालतू मान लिए गए ख़ातों में डाल दिया जाता है। यानी जो ट्रैश और डिलीट किए जा चुके हैं उनका क्या होगा? यह कल्पना करना मुश्किल है कि इस तरह के लोग किस नेटवर्क में शामिल हैं। पश्चिम के अभिजनों और वहाँ के जनमाध्यमों के पास आज के नेटवर्क समाज की समस्याओं और तनावों का हल नहीं है। पश्चिम के अभिजन और उनके संचार माध्यम इस्लामी कट्टरवाद को जिस तरह हर समस्या की जड़ मानते हैं उससे नेटवर्क समाज की समस्याओं, उसके जोश व तनावों को समझने में कोई सहायता नहीं मिलती। इसका नतीजा निकलता है तो सिर्फ़ ये कि एक पूरे समूह को नेटवर्क से बाध्य और अनभिज्ञ होने का भ्रम फैले – और समूह भी ऐसा जो तथाकथित रूप से नेटवर्क की कार्यप्रणाली को भेद चुका है।

रैडिकल नैतिकता का जनमत से कोई वास्ता नहीं। यानी यह एक ऐसी स्थिति है जहाँ नेटवर्क समाज का विमर्श पूरी तरह ध्वस्त हो जाता है और इसके पीछे कारण यह है कि नेटवर्क विमर्श अपने से बाहर के दृष्टिकोण को समाहित करने की बात तो दूर उनकी कल्पना करने से भी क़ासिर है। यही वह बिन्दु है जहाँ कैस्टेल्स का मार्क्सवादी चिंतकों – नेग्री और हार्ट से मिलन होता है और जहाँ जेसुइट धारा तीसरे मार्ग के दायरों और मुग़लतों से गलबहियाँ करती दिखायी देती है। नेटवर्कों में एक ख़ास तरह का उत्तर-मानवीय चरित्र होता है। यहाँ 'सहज मानवीय व्यवहार' ढूँढे नहीं मिलता। नेटवर्क असल में एक ऐसा तकनीकी सामाजिक पर्यावरण है जिसे सरल ढंग से नहीं समझा जा सकता। उसे सत्ता के एक विराट रूपांतरण की प्रणाली के तौर पर समझा जाना चाहिए। सत्ता का उन्मूलन करने वाले नेटवर्क अभी तक बन नहीं पाए हैं। हद से हद नेटवर्क संस्कृति को हम औपन्यासिक परंपरा की प्रेरणा में अच्छे और बुरे के फ़र्क़ से बाहर ही रख कर देख सकते हैं और यहाँ भी ये संस्कृतिया प्रूस्त की मनोवैज्ञानिक गहराई, विक्टर ह्यूगो के सामाजिक नाटक या हायपरटेक्स्ट के महारथी, जेम्स जॉयस की गहरी कड़ीकारी को नहीं छू पाती।

## 2. मुक्त सहयोग का सिद्धांत

आकादमिक जगत तथा पत्रकार अकसर इंटरनेट की क्षमता को किताब और पत्रिका के अलावा प्रकाशन के एक अतिरिक्त माध्यम के रूप में देखते हैं। लेकिन इंटरनेट सिर्फ़ खुद की ढोल पीटने का औज़ार नहीं है। सच तो यह है कि इंटरनेट के विकास का यह उद्देश्य था ही नहीं। होम पेज और वेब ब्लॉग के पार ही नेट की दुनिया शुरू होती है। ब्राज़ील के बहुत से लोगों के लिए इंटरनेट का मतलब गपशप-कोना (चैट रूम्स) और टीवी की ऑनलाइन निर्देशिका-भर है। उनके लिए नेट इससे ज़्यादा कुछ नहीं है। लेकिन इस माध्यम को सिर्फ़ यहीं तक सीमित करने से बात समझ में नहीं आती। आइए ज़रा इस सरलीकरण के पार देखने की कोशिश करें। बहुत सारे मामलों में लोग-बाग किसी ख़ास प्रयोजन के लिए एक-दूसरे के साथ मिल कर काम करते हैं और नेट पर एक-दूसरे की राय और सामग्री का आदान-प्रदान करते हैं। वास्तव में, इंटरनेट को जो चीज़ परिभाषित करती है वह है उसका सामाजिक स्थापत्य। इंटरनेट का बुनियादी काम सिर्फ़ सूचनाओं और सामग्री का भंडारण और उनका पुनरुत्पादन नहीं है। असली चीज़ है वह जीवंत माहौल जो उसकी कार्यप्रणाली से जुड़ा है। 23-24 अप्रैल 2004 को हमने न्यूयॉर्क के कलाकार ट्रेबोर शोल्ज़ के साथ न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय के बफ़लो कैम्पस में मुक्त सहयोग को लेकर एक सम्मेलन आयोजित किया था। इस सम्मेलन में हमने सहयोग की (ऑनलाइन) कला को मीडिया कार्यकर्ता/कलाकार के नज़रिए से देखने की कोशिश की थी। हमारा रोज़मर्रा का जीवन तकनीक के विभिन्न उपकरणों, जैसे सेल फ़ोन, ई-मेल, मल्टीप्लेयर ऑनलाइन गेम्स, मेलिंग लिस्ट, वेब ब्लॉग्स और विकियों में नत्थम-गुत्थम होता जा रहा है। इन तकनीकी चैनलों में, जो हमारे संप्रेषण का भी मार्ग है, सहयोग करने से जो स्थिति पैदा होती है, उसकी पड़ताल की ज़रूरत जल्द ही और स्पष्ट हो जाएगी। संजालित सहयोग के संदर्भ में आज़ादी हासिल करने व उसको बढ़ावा देने का काम कैसे हो? एक सवाल यह भी है कि नेटवर्क जैसे साझे स्रोत को आप सामूहिक तरीक़े से कैसे प्रबंधित करते हैं?

हमने ब्रेमन मीडिया आलोचक क्रिस्टॉफ़ स्पेर को भी इस कॉन्फ़्रेंस में बुलाया था। हम जिस मुक्त सहयोग की बात करते आ रहे हैं वह क्रिस्टॉफ़ का ही शब्द ही है। उन्होंने इस पद का इस्तेमाल अपने लेख 'दूसरों से ज़्यादा बराबर' में किया है। सन 2003 में मैंने स्पेर से नेट पर एक इंटरव्यू लिया था।[23] अंग्रेज़ी भाषी जगत अभी तक स्पेर के लेखन से परिचित नहीं था। मेरे लिए यह उनके लेखन को अंग्रेज़ी भाषी मीडिया विमर्श में लाने का एक मौक़ा था। स्पेर के लेखन में 60 के दशक का वैज्ञानिक गल्प फ़िल्मों के सदंर्भ बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन फ़िल्मों के सूचकों को स्पेर मौजूदा दौर में सहयोग के विस्तार पर विचार करने के लिए प्रयुक्त करते हैं। वो ज़ोर देते हैं कि उन फ़िल्मों के 'एलियन' या अजनबी के स्थान पर हम हालिया कॉरपोरेट राज्य-रूपी शैतान को रख उसके साथ सहयोग से इन्कार, मुक्ति, हुज्जत व पुनरावलोकन के पैमाने बनाएँ। समानता और स्वतंत्रता के विचारों पर फ़ोकस करते हुए इस कॉन्फ़्रेंस में सवाल उठाया गया कि समानता और स्वतंत्रता के विचारों को ज्ञान और विश्वविद्यालय के वैकल्पिक नेटवर्कों के लिए कैसे लाभकारी बनाया जा सकता है। स्पेर की बुनियादी अवधारणा यह है कि हर व्यक्ति को किसी भी समय सहयोग की संधि से बाहर आने की आज़ादी होनी चाहिए। हमारे लिए एक ऐसी भाषा को परिभाषित करना बेहद ज़रूरी है जिसमें हम खुले ढंग से, अपने समूहों के मतभेदों, सत्ता या नेटवर्कों के बारे में बात कर सकें। नेटवर्क प्रयोक्ताओं के लिए नेटवर्क से बाहर आना एक सम्प्रभु और स्वायत्त कर्म होना चाहिए। दरअसल सारी ऑनलाइन गतिविधियों का दारोमदार इसी बात पर है कि उपयोक्ता जब चाहे तभी नेटवर्किंग की राह अख़्तियार करे। यह एक ऐसी बुनियाद है जिस पर ऑनलाइन गतिविधियों की इमारत टिकी है। अगर आप लॉग आउट करना नहीं जानते तो आप अंदर फँस कर रह जाएँगे।

मैं अब जनता-जनार्दन और सहयोग के आपसी संबंध के बारे में बात करना चाहूँगा। पाउलो विरनो ने अपनी पुस्तक 'अ ग्रामर ऑफ़ द मल्टीटूयुड' में 'समकालीन उत्पादन की प्रकृति' के बारे में विचार

किया है। यहाँ जिन सवालों को उठाया गया है उन्हें आत्मपरक कहा जा सकता है और वे 'नकार' की क्रिया के बाद पैदा होते हैं। अगर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पूरे जीवन का मतलब काम में फँस कर रह जाना हो गया है तो सहयोग की बात कहाँ रह जाती है। यहाँ मैं कहना चाहूँगा कि किसी न किसी बिन्दु पर जाकर हमें नकार की इस भावना से निजात पानी होगी। वरना हमारा सारा कर्म एक व्यक्तिगत निषेधवाद के गर्त में जा गिरेगा या हम मैक्स स्टर्नर क़िस्म के उस अहंवाद का शिकार होकर रह जाएँगे जहाँ पहुँचकर हमें लगता है कि सहयोग करने के लिए बचा ही क्या है।

कर्महीनता एक विकल्प है, ध्येय नहीं है। उसके एजेंडे को लेकर एक बुनियादी सहमति बनाकर यह तय किया जाना चाहिए कि करना क्या है। सहयोग का सवाल यहीं से शुरू होता है। यह सवाल राजनैतिक शून्य में भी नहीं उठाया जा सकता। अगर ऐसा किया जाता है तो समूचा मामला प्रबंधन का मुद्दा बनकर रह जाता है। तकनीक की दुनिया में शामिल होने या सहयोग करने-भर से कोई मुद्दा राजनैतिक आंदोलन की शक्ल अख़्तियार नहीं कर लेता। व्यक्तिगत और सामूहिक अनुभवों को सैद्धांतिक रूप देने की कोशिश इस अहसास से उपजती है कि हमारे पास सहयोग न करने की आज़ादी होनी चाहिए। हमारे पास इस संबंध में निकास की रणनीति होनी ही चाहिए। पहली नज़र में यह एक रहस्यवादी और आत्मविरोधी भाव लग सकता है। जैसा कि क्रिस्टॉफ़ स्पेर ने सुझाव दिया है: सहयोग की नींव के रूप में ही नकार का विचार क्यों आगे बढ़ाया जाना चाहिए? इससे एक नए नियम और 'नॉटवर्किंग' या कर्महीनता को एक और मानव अधिकार बनाने की बू आती है। मुक्त सहयोग का सवाल मूलत: संगठन का सवाल है जो फ़ोर्ड के फ़ैक्ट्री मॉडल और उसके राजनीतिक बिंब, राजनीतिक पार्टियों में उत्पन्न संकट से जुड़ा है। यह काफ़ी सामान्य बात लग सकती है। उत्तर-फ़ोर्डवाद के साथ एक हद से ज़्यादा माथापच्ची करने का मतलब इतालवी दृष्टांत पर ज़रूरत से ज़्यादा ध्यान देना हो सकता है (कहने की ज़रूरत नहीं है कि स्वत: स्फूर्त हड़तालों की संस्कृति सार्वभौमिक नहीं है)। यह हम पर निर्भर करता है कि हम इतालवी अवधारणाओं को किस तरह नया रूप दे पाते हैं तथा ग़ैरसरकारी संगठनों के दफ़्तरों की अवसादपूर्ण संस्कृतियों, सामाजिक सॉफ़्टवेयर के अंदरुनी सत्ता संबंधों, डॉटकॉम जीवनशैली, अस्थायी फ़्रीलान्स ठेकों और कॉल सेन्टर के अवसाद या प्रॉजेक्ट-प्रबंधन की उबासी को किस तरह से अध्ययन का विषय बना पाते हैं।

'नए सामाजिक आंदोलनों' का अध्ययन शायद पहले ही अतीत की बात हो चुकी है और उसकी जगह हमें अब आज के अल्पजीवी उभारों को स्थान देना चाहिए। गैलोवे के शब्दों में : केन्द्र ख़त्म होने के बाद राजनीति रह ही क्या जाती है। शायद अब आन्दोलनों ('आन्दोलनकारी आन्दोलनों') के बारे में बात करना भी बहुत मानीख़ेज़ नहीं रह गया है। आज के माहौल में आम जनजीवन और नेट पर आंदोलन की बात करना शायद संगठन और निरंतरता का भ्रम पैदा करना है। समय-रेखा और महत्त्वपूर्ण घटनाओं की सामूहिक स्मृति के बिना आन्दोलन का कोई मतलब नहीं होता। यह ठीक है कि राजनीतिक और सांस्कृतिक विविधता को व्यक्त करने के लिए यह पद शायद उचित हो लेकिन इसमें निरंतरता का वायदा अंतर्निहित है और इस वायदे के साथ यह विचार जुड़ा आता है कि इस पतन और अनुपस्थिति की हिमायत की जा सकती है। आन्दोलन कभी नहीं रुकना चाहिए। आन्दोलन को एक चरित्र और दिशा देने वाली ऊर्जा को ख़त्म नहीं होने देना चाहिए। दरअसल यही वह बिन्दु है जहाँ सच्चे आस्तिक का अभेद्य तत्व हमारी संरचना में प्रवेश करता है। जनता को दुबारा सड़कों पर लाने के लिए नए अनुष्ठान गढ़े ही जाएँगे चाहे इसकी कोई भी क़ीमत अदा क्यों न करनी पड़े। पाउलो विरनो के अनुसार, श्रम के समाज का संकट जनसमूह में प्रतिबिम्बित होता है। हम इस बात को बढ़ाकर यूँ भी कह सकते हैं कि मल्टीट्यूड अपने आप में एक बेहद समस्यापूर्ण पद है और यह पूंजी या 'नियंत्रण प्रेमी समाज' के लिए नहीं बल्कि खुद अपने लिए भी एक समस्या है। यह बात समझने में थोड़ा वक़्त लगता है और इसे समझने की एक आदत डालनी पड़ेगी कि क्रांतिकारी अपनी क्रांतियों से खुद ही ऊब सकते हैं। आजकल बग़ैर विराट

क्रांति के ही सामूहिक हर्षोन्माद की बात की जाने लगी है। विखंडन कोई रुमानी दु:ख नहीं है बल्कि यह राजनीतिक जीवन की एक बुनियादी शर्त है। नेटवर्किंग की स्थितियाँ इस प्रक्रिया को सॉफ़्टवेयर और डेटा बेस संरचनाओं में लिप्यंतरित करने का काम ही करती हैं।

पाउलो विरनो लिखते हैं : 'सामाजिक पूंजी विज्ञान और जनसामान्य की बौद्धिकता से पैदा होती है, व्यक्तिगत प्रतिभा या कार्य से नहीं। अपेक्षित कार्यभार जीवन के नगण्य अंश में सिमटता प्रतीत होता है। श्रम में लगे समय के बजाय विज्ञान, सूचना, आम ज्ञान, सहयोग आदि जैसी चीज़ें उत्पादन का मुख्य आधार होती हैं।' इन सारी चीज़ों के मद्देनज़र सहयोग एक अपवाद ही ठहरता है। यह कोई नियम नहीं होता, न ही रोज़मर्रा की स्थिति। असल में, यह इतनी दुर्लभ और अनिश्चित स्थिति है जो हमेशा लुप्त होने के कगार पर होती है। विरनो के अनुसार श्रम में लगे समय और ग़ैर-श्रम समय के बीच का फ़र्क़ कम रहता है। यही कारण है कि सहभागिता के बारे में हम इतने अनिश्चित हैं। ऐसे कौन से काम, मुद्राएँ और विचार हैं जिनमें सहयोग के अवशेष निहित नहीं है। सहयोग और असहयोग के बीच का फ़र्क़ चिह्नित करना मुश्किल से मुश्किलतर होता जाता है। एकाकी जीनियस और बहुधंधी टोलियों के बीच का वैषम्य जीवन के विचित्र विकल्प-जैसा लगता है, और अप्रासंगिक है।

तो इस तरह महत्त्वपूर्ण बात यह है कि प्रत्येक ऋण अर्थव्यवस्था के भीतर सौदेबाज़ी किस तरह संपन्न होती है। सहभागिता के कौन-से अवशेष दृश्यमान रहते हैं। क्या स्वामित्व की शर्तों को लेकर आगे बातचीत की जा सकती है या स्वामित्व के रूप और श्रम विभाजन को पहले दिन ही तय कर दिया गया है। आख़िर कितनी 'असफल सहभागिताओं' को झेला जा सकता है। यह ठीक है कि मनुष्य 'सामाजिक प्राणी' कहा गया है। परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि वह चीटियों की तरह व्यवहार करता है। भेड़चाल की प्रवृत्ति काफ़ी मज़बूत होती है और इसके चलते सहभागिता को एक गुण की

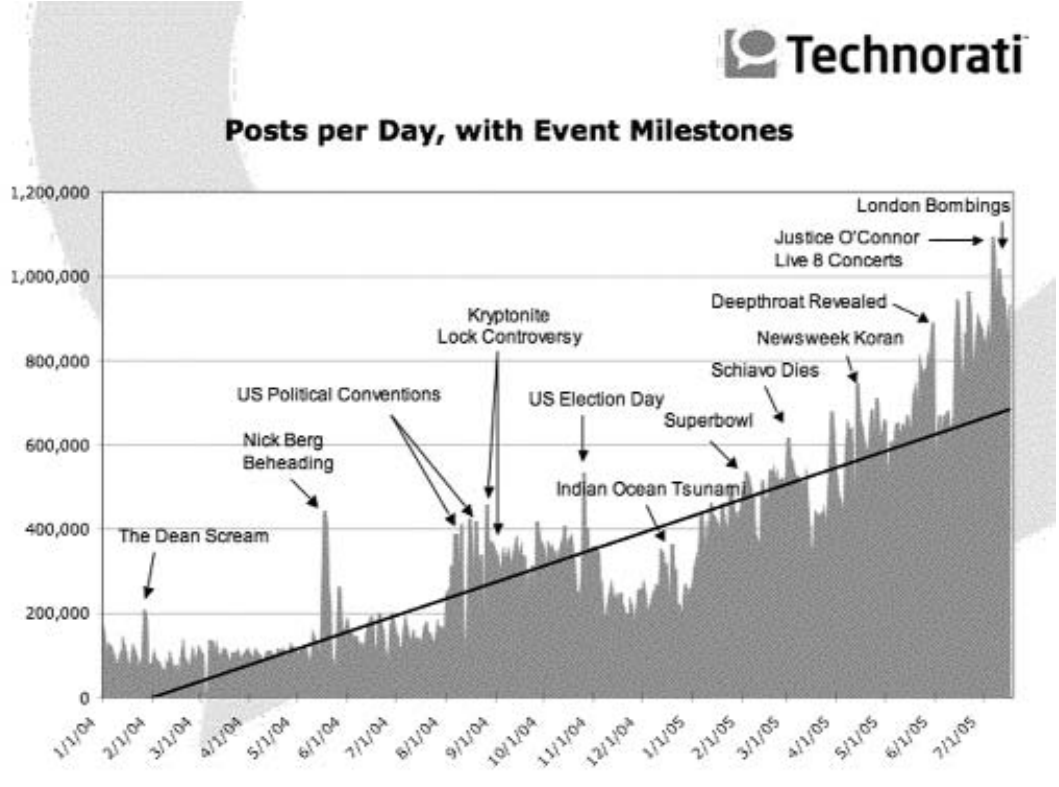

तरह बढ़ावा देना मुश्किल हो जाता है। इसके बावजूद ज्ञान और जानकारी की राह ने जरथुस्त्र के मार्ग बन्द कर दिए हैं। मनुष्य के व्यष्टिकरण की प्रक्रिया में समाज बाधक नहीं है वस्तुतः असली मुद्दा मूल्यांकन के तरीक़े का है।

सामूहिक तौर से काम करने की मजबूरी (ख़ास तौर से सम्मेलनों, मेलों, विरोध-प्रदर्शन, प्रकाशन, विराट व जटिल कला प्रदर्शनी के क्षेत्रों में) को व्यक्तिगत श्रम से उपजे एकाकीपन से उबरने की चाह के बीच अलगाना मुश्किल हो जाता है। नए मीडिया की कलाकृतियों के संदर्भ में सहयोगात्मक श्रम ज़रूरत भी है और मजबूरी भी क्योंकि कोई अकेला कलाकार इतना सक्षम नहीं है कि अपने बूते पर दृश्य-चित्र, थ्रीडी, ध्वनि, संपादन, प्रदर्शन, अभिव्यक्ति सब में सक्षम हो और अकेले ही प्रबंधन व वित्त आयोजन आदि का भार भी संभाल सके। यहाँ सवाल पैदा होता है 'आभार की अर्थव्यवस्था' का (जो अपने आप मे पूरा एक विषय है) और ये कि कृतियों का रचयिता या किसी एक वीडियो कलाकार का रचयिता (मान लें बिल वियोला) एक व्यक्ति हो या सच्चाई से ज़्यादा निकट पूरा समूह। फ़िल्म उद्योग में इसके पीछे एक लंबी जद्दोजहद रही होगी कि आभार में किस-किस का नाम आना चाहिए। शब्द मुझे पुनर्जागरण काल की पेन्टिंग कार्यशालाओं की याद दिलाता है। जाने कितने कलाकार इन चित्रशालाओं से निकल कर आए! पर हमारे दौर में सामूहिक काम करने वालों को अजूबा माना जाने लगा है।

पिछले कुछ वर्षों के दौरान मैंने यह बात नोट की है कि समूह की अंदरूनी गतिकी को लेकर लोग बहुत उत्सुक होते हैं। सहयोग का आयोजन दूसरों में उसके प्रति ताक-झाँक की प्रवृत्ति पैदा करता है क्योंकि समूह की अन्दरूनी उठापटक को सहज व नैसर्गिक माना जाता है। प्रचलित पूर्वाग्रह यह है कि सामूहिक कार्य आसान नहीं है और अकसर उसका अंत नाटकीय और त्रासद ही होता है। कोई पन्द्रह साल पहले मैंने और कुछ दोस्तों ने एडिल्क्नो (डच/जर्मन में बिल वेथ) के नाम से 'एक्सट्रा म्यूरल थ्योरी' पर काम किया था। यह योजना ग़ैरक़ानूनी ज्ञान को आगे बढ़ाने की थी। एडिल्क्नो ने सहभागिता की इस प्रक्रिया को 'तीसरे दिमाग़' की संज्ञा दी और कहा कि इस तरह का संयुक्त कार्य व्यक्तिगत रुचि व बुद्धि से बुनियादी तौर पर भिन्न होता है। एडिल्क्नो के इस अनुभव से नौवें दशक के मध्य में एक नयी योजना निकल कर आयी। इस योजना के अन्तर्गत मैंने पिट शुल्ज़ के साथ चार वर्षों तक बहुत गंभीरता से कार्य किया। यह 'नेट समीक्षा' का स्वर्णिम युग था। हमारी इस संयुक्त परियोजना का नाम था 'नेट टाइम'। आजकल मेरे काम का 99% हिस्सा आभासी सहभागिता पर टिका है। वास्तविक जीवन में काम करना मज़े की बात होती है। अपनी जानी-पहचानी जगह पर समूह के साथ काम करना एक अद्वितीय अनुभव होता है। लेकिन जैसे-जैसे कंप्यूटर नेटवर्कों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है वैसे-वैसे अपने आस-पड़ोस में सहयोगियों को ढूँढ पाने की संभावना कम से कम होती जा रही है।

जैसे-जैसे ऑनलाइन काम बढ़ता जाएगा वैसे-वैसे ही यह ज़रूरत भी कि हम ऑनलाइन काम करने में सहायक औज़ारों को समझें। मिसाल के तौर पर मशीनों को जेंडर से जोड़ कर देखें यानी पुरुष-पुरुष, स्त्री-पुरुष, स्त्री-स्त्री के सहयोग पर टिके कार्यों पर नज़र डालें। जर्मनी के दो मीडिया सिद्धांतकारों फ़्रेडरिक किटलर और क्लाउस थेवलेट ने इस पर काफ़ी काम किया है। आठवें दशक के दौरान थेवलेट और किटलर फ़्रायबर्ग में एक ही विभाग में काम करते थे। जेंडर, मीडिया और सहभागिता के त्रिकोण पर केंद्रित उनके कार्यों में ज़बर्दस्त समानता है। इसके कार्यों में पुरुष-माध्यम-पुरुष या स्त्री-माध्यम-स्त्री संबंध भी बन सकते हैं, लेकिन हमारे जैसे विषमलैंगिक संबंधों वाले समाज में पुरुष-स्त्री-मशीन देह की 'बलि' देते हैं।

हमें अपने आप से पूछना चाहिए कि क्या जेंडर के ऐसे क़िस्से अभी भी सुनने में आते हैं। इंटरनेट और कंप्यूटर के बारे में मैं हमेशा इसी पूर्वानुमान के साथ सोचता हूँ कि शायद जो व्यक्ति काम

कर रहा होता है वह अविवाहित होता है। मेरे दिमाग़ में ऐसे पुरुष जीनियस लेखक की तस्वीर नहीं उभरती है जो अपनी कृति बोलकर अपनी सचिव या सहायिका से टाइप करा रहा हो। हालाँकि मेरी बात पूरी तरह ग़लत भी हो सकती है। क्या इस मामले में टाइपराइटर की जगह कंप्यूटर आ जाने से कोई महत्त्वपूर्ण फ़र्क़ पड़ा है? शायद ऑनलाइन पाठ/ज्ञान के उत्पादन की जेंडर स्थितियों को समझने के लिए वर्तमान के सांस्कृतिक इतिहास को गढ़ने की ज़रूरत पड़ेगी। इंटरनेट के कुल उपयोक्ताओं में आधी संख्या महिलाओं की है। लेकिन गीक्स/प्रोग्रामर ज़्यादातर पुरुष ही हैं।

सहभागिता, विशेषकर मुक्त सहभागिता कुछ-कुछ आदर्शवादी बात लगती है। क्या सहभागिता उनलोगों का शग़ल है जो अपने आप से उकता चुके हैं या जिनके पास 'कम क्षमताएँ' है। अन्ततः मनुष्य सामाजिक प्राणी ही है। इस संदर्भ में हमें टेक्नो-यथार्थवादी ही रहना चाहिए। बेहतर यह होगा कि हम इस मुद्दे को ज़्यादा सनक के साथ न खँगालें। इस परिघटना को समझने का एक दूसरा तरीक़ा यह हो सकता है कि सांस्कृतिक अर्थव्यवस्था के उत्थान की पड़ताल की जाए और यह देखा जाए कि कला उद्योग लोगों को टीम के रूप में काम करने के लिए कैसे मजबूर करते हैं। आख़िरकार नेटवर्कों का आर्थिक नवाचार मल्टीट्यूड की बुनियादी शर्त है। यही बात नए मीडिया पर भी लागू होती है। कंप्यूटर इंजीनियरिंग, स्थापत्य, डिज़ाइन जैसे क्षेत्रों में टीम कार्य ज़रूरी होता है लेकिन यह देख कर आश्चर्य होता है कि इस मुद्दे की समझदारी कितनी अविकसित है।

शायद साहित्य, दृश्य-कलाओं और अकादमिक जगत में सामूहिक कार्य की लड़ाई कभी नहीं जीती जा सकती। संस्थाएँ अस्पष्ट सामाजिक संरचनाओं के साथ काम करना पसंद नहीं करतीं क्योंकि वहाँ कोई जवाबदेही नहीं होती। यहाँ हमें संगठित नेटवर्क (नीचे देखें) और नेटवर्क पर आधारित संगठन के बीच फ़र्क़ करना चाहिए। संगठनों का नेटवर्क बनाना और संस्थाओं के बीच सहयोग के पुल खड़े करना आसान होता है लेकिन असली चुनौती है संगठित नेटवर्क के मॉडल का रूपांतरण यानी उस आभासी समुदाय का रूपांतरण जो वास्तविक दुनिया के साथ साक्षात्कार नहीं कर रहा है। वास्तव में, यथार्थ और आभासी दुनिया की यह मुठभेड़ ही सहभागिता के प्रकार को तय करती है। 'वास्तविक जीवन' में मिले बिना सिर्फ़ नेट के ज़रिए एक दूसरे के साथ सहयोग करते जाना बहुत मुश्किल और थकाऊ काम होता है। यह ऑनलाइन कार्य बेहद निष्प्रभावी और ढीला-ढाला हो सकता है। यहाँ सफल होने के लिए अपार धीरज की ज़रूरत होती है। बहुत सारे लोगों को लगता है कि हम प्रकाश की गति की रफ़्तार से संवाद कर रहे हैं। परन्तु जब आप किसी ऐसी जटिल परियोजना पर कार्य कर रहे हों जिसके सदस्य पूरी दुनिया में बिखरे हुए हों तो इस बात का कोई मतलब नहीं रह जाता। सहयोग में दिलचस्पी तभी पैदा हो पाती है जब अनौपचारिक नेटवर्क शुरुआती उत्साह की स्थिति से उबर कर एक नयी चीज़ की शक्ल अख़्तियार कर लेते हैं। वह एक विलक्षण और रहस्यमय क्षण होता है जब यहाँ-वहाँ बिखरे छोटे-छोटे समूह आपस में मिलकर एक बड़े सामाजिक आन्दोलन की बुनियाद बन जाते हैं। (जैसा कि ऐलेन बैदो फ़रमाते हैं) लेकिन इसे अपवाद ही कहा जाएगा। वैयक्तिक सहभागिता का लक्ष्य ऐतिहासिक घटनाओं का निर्माण करना नहीं होता।

'विश्व सामाजिक मंच', 'इंडीमीडिया' और 2003 के युद्ध-विरोधी प्रदर्शनों के मामले में यह देखना दिलचस्प है कि 'स्केलेबिलिटी' (यानी अपनी चेष्टा को व्यापकतर बनाना) के साथ काम करने में इन आन्दोलनों को काफ़ी मुश्किलों का सामना करना पड़ा है। विकेन्द्रित और स्वायत्त संगठन हमेशा विखंडन के शिकार रहते हैं, उनके आधार पर टिकाऊ और व्यापकतर संरचनाएँ बनाना मुश्किल होता है। बाख़्तिन के शब्दों में कहें तो हम जैसे हाइपर व्यक्तियों के लिए ऐतिहासिक घटनाएँ उत्सव की तरह हो गयी हैं। इतिहास का निर्माण अब रोज़मर्रा में उत्सव का हस्तक्षेप बन गया है। इससे इन बड़ी घटनाओं को दूसरों तक पहुँचाना या उन्हें एक तजुर्बे की तरह दूसरों को सौंपना बेहद मुश्किल हो गया है।

### 3. संगठित नेटवर्कों का उदय

पहली नज़र में संगठित नेटवर्कों की अवधारणा विरोधाभासी दिखायी पड़ती है। तकनीकी शब्दावली में बात करें तो सभी नेटवर्क संगठित होते हैं। हर नेटवर्क का कोई न कोई संस्थापक, प्रशासक, संचालक और सक्रिय सदस्य होता है। इस संबंध में ज़रा बैटसन एवं अन्य सहयोगियों के साईबरनेटिक्स के शुरुआती काम पर नज़र डालें। नेटवर्कों में गतिशील संबंध निहित होते हैं जिनकी व्यवस्था किसी ख़ास बिन्दु पर फ़ीडबैक या शोर से तय होती है। नेटवर्कों की व्यवस्था संबंधों का एक ऐसा सातत्य है जो विभिन्न हितों, भावनाओं, प्रभावों और अलग-अलग लोगों की व्यावहारिक ज़रूरतों से निर्देशित होता है। संबंधों का नेटवर्क कभी भी स्थिर नहीं होता। लेकिन हमें इसकी सतत तरलता की स्थिति भी समझनी चाहिए। जो लोग राजनीतिक कर्ता के रूप में काम करना चाहते हैं उनके लिए क्षणभंगुरता उत्सव मनाने की परिस्थिति नहीं होती।

संगठित नेटवर्कों के सिद्धांत को एक ऐसे प्रस्ताव, मसौदे और अवधारणा के रूप में देखा जाना चाहिए जो हमेशा निर्माण की प्रक्रिया में रहता है और जिसे असहमति और सामूहिक रूप से आगे बढ़ाने की आवश्यकता रहती है। इसका तात्कालिक विखंडन वांछित नहीं है। यह तो कोई भी कर सकता है। कहने की ज़रूरत नहीं कि संगठित नेटवर्क सदियों से अस्तित्व में रहे हैं। उनका इतिहास लिखा जा सकता है और लिखा भी जाएगा लेकिन यह आगे बढ़ने का रास्ता नहीं है। हम यहाँ जिन नेटवर्कों की बात कर रहे हैं वे ख़ास तरह के नेटवर्क हैं जो तकनीकी मीडिया में अवस्थित हैं। उनकी विशेषता इस बात से आँकी जा सकती है कि वे पुराने मीडिया और सत्तारुढ़ लोगों के लिए बेमानी और अदृश्य बने रहते हैं। नेटवर्कों का सामान्य सिद्धान्त ज्ञान के लिए बेशक उपयोगी हो सकता है लेकिन उससे नए मीडिया पर आधारित सामाजिक नेटवर्कों को समझने में मदद नहीं मिलती। अणुओं और डीएनए को नेटवर्क मानने से हमें क्या हासिल होता है?

यह आज का स्वयंसिद्ध सत्य है कि समाज से बाहर कोई नेटवर्क नहीं होता। सभी मानव-तकनीकी रूपों की तरह नेटवर्क भी सत्ता से बिंधे रहते हैं। वे एक आदर्श फ़ूको मशीनवादी हैं क्योंकि नेटवर्क सत्ता का उत्पादन करने की प्रक्रिया में ही उन्हें नष्ट भी करते रहते हैं। नेटवर्कों का सत्ता-रेखाचित्र बहुत सारे पैमानों पर काम करता है। उसका दायरा स्थानीय नेटवर्कों से लेकर बहुराष्ट्रीय विद्रोहों तक फैला हुआ हो सकता है। देखने में नेटवर्क चाहे कितने भी सरल दिखायी दें परन्तु सच्चाई यह है कि ये मतभेदों को जन्म देते हैं। बक़ौल फ़ूको : सत्ता स्वयंभू है, इसी बात को आप संगठित नेटवर्क के रूप में अनूदित करें तो आपको ईजाद की ताक़त का अहसास होगा। वाक़ई, यह अनुवाद ही ईजाद की शर्त है। जैसा कि रेजिस डेब्रे का कहना है मीडियाशास्त्र नेटवर्कों के सामाजिक-तकनीकी तंत्र में आविष्कार का आचार है। सामाजिक संबंधों की आलोचना के एक अंतर्मुक्त तरीक़े के रूप में मीडियाशास्त्र बहुत सारे संबंधों के नेटवर्क से मिलकर बनता है और यह संबंध समस्याओं और अव्यक्त भावनाओं के इर्द-गिर्द मौजूद होते हैं। इस अर्थ में नेटवर्क कमांड और नियंत्रण की कोशिशों से लगातार बच निकलते हैं। विविध रूपता ऐसी ही होती है।

नेटवर्कों के उपयोक्ता अपने साथियों के दायरे को पंथ के रूप में नहीं देखते, उनका जुड़ाव हमेशा ढीला-ढाला होता है। यह जुड़ाव हमेशा टूटने के कगार पर रहता है। इस प्रकार नेटवर्क के प्रयोक्ता का अस्तित्व-ज्ञान पूंजी के तर्क को प्रतिबिम्बित करता है। वास्तव में यह प्रयोक्ता उस पूंजी की पहचान-चिह्न के रूप में सामने आता है जो ख़ुद को हमेशा नियमन और नियंत्रण की सख़्त व्यवस्था से बचाए रखने की जद्दोजहद में लगा रहता है। नेटवर्क का उपयोक्ता दरअसल आत्म-आविष्कार का स्वचालित रुपक-सा बन चुका है। बहुत से लोग यह कह सकते हैं कि नेटवर्क का प्रयोक्ता महज़ एक

ऐसा उपभोक्ता है जो तब तक संतुष्ट रहता है जब तक कि आफ़त उसे चारों ओर से न घेर ले। उपयोक्ता दीगर माध्यमों द्वारा नियंत्रण की पहचान-भर है। इस संदर्भ में, उपयोक्ता की तुलना एक ऐसे ख़ाली बर्तन से की जा सकती है जो अपने ख़ालीपन को भरने के लिए डिजिटल कमॉडिटी संस्कृति की गतिशीलता और खुलेपन का इन्तज़ार कर रहा है। हमें कोई भ्रम नहीं पालना चाहिए : सामाजिकता पूंजी की ताक़तों द्वारा चालित गतिशील तकनीकों से गहरे तौर पर आबद्ध है। नेटवर्क हर जगह मौजूद है। निकट भविष्य की चुनौती जीवन में नयी शुरुआत, नयी संभावनाओं और नए देशकाल को किसी तरह संभव बनाने की है, जिनके ज़रिए जीवन अपने नैतिक व सौंदर्यपूर्ण अस्तित्व की अहमियत पर ज़ोर दे सके।

संगठित नेटवर्कों को एक ऐसे प्रस्ताव के रूप में पढ़ना चाहिए जिसका लक्ष्य 'आभासी समुदाय' को प्रतिस्थापित करना है। इस प्रस्ताव को नेटवर्क के भीतर काम कर रहे सत्ता संबंधों को ऐजेंडे पर लाए और सहमति के दौर में क़ायम हुए अदृश्य नातों से रिश्ता तोड़ने को कोशिश करे। संगठित नेटवर्क सामाजिक संबंधों के ऐसे 'बादल' हैं जिनके भीतर हद दर्जे का विच्छेद देखने को मिलता है। समुदाय एक आदर्शवादी गढ़न्त है, जिसमें परस्पर अंतरंगता व सामंजस्य की भावना निहित है। लेकिन अकसर ऐसा होता नहीं है। यह बात 9/11 के बाद 'भरोसे' के लिए जारी की गयी अपील के बारे में भी कही जा सकती है। नेटवर्क विविधता और द्वंद्व पर पलते हैं नॉटवर्किंग। उनकी ख़ुराक एकता नहीं होती और यही वह चीज़ है जिस पर समुदाय के सिद्धांतकार सही ढंग से विचार नहीं कर सके। इन लोगों के लिए असहमति का मतलब संवाद के 'रचनात्मक' प्रवाह का टूटना है। अविश्वास को उत्पादकता के सिद्धांत की तरह देखने के लिए थोड़ी मेहनत करनी पड़ती है। नेटवर्कों के बीच उदासीनता ही वह कारण है जो संगठन की संभावनाओं को नकारती है। इसलिए इस पहलू पर गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए। अन्तर्क्रिया और जुड़ाव या शामिल होना आदर्शवादी गढ़न्त हैं।

सर्वत्र निष्क्रियता का राज है। ऑनलाइन जीवन में ब्राउज़िंग, देखना, पढ़ना, इंतज़ार करना, सोचना, डिलीट करना, चैटिंग करना, और सर्फ़ करना सहज क्रियाएँ है। संपूर्ण लगन और जुड़ाव उच्चतम दर्जे का पागलपन माना जाता है। नेटवर्क की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसकी क्षमता का पूरी तरह इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। लाखों लोगों के बीच बातों का आदान-प्रदान हर नेटवर्क को तोड़कर रख देगा चाहे नेटवर्क का स्थापत्य कितना ही विशाल और मजबूत क्यों न हो। हर नेटवर्क निष्क्रियता और सक्रियता के अंतराल से गुज़रता है। नेटवर्क ढीले-ढाले संबंधों को जन्म देते हैं - यह बात हमें सीधे-सीधे मान लेनी चाहिए। नेटवर्क वस्तुतः निस्संयम रिश्तों की आनंदमार्गी मशीनें हैं। जो लोग नेटवर्कों पर काम करते हैं उनके बीच सहयोग अस्थायी और स्वैच्छिक होता है। सहयोग की यह भावना एक हद तक बिखराव और अलगाव के माहौल को चुनौती भले दे डाले लेकिन उसे तोड़ने में सक्षम नहीं होती।

संगठित नेटवर्क का ख़याल रणनीतिक वजहों से ग़ौरतलब है। टैक्टिकल मीडिया को उभरे एक दशक बीत चुका है। अब रैडिकल मीडिया की गतिविधियाँ ज़्यादा संगठित और बड़े स्तर पर चली जानी चाहिए। यह अच्छी बात है कि हम कल्याणकारी राज्य की पुरानी फ़ंतासी से मुक्त हो चुके हैं। नेटवर्कों को खाते-पीते इदारों में कभी भी 'जगह' नहीं दी जाएगी। आधुनिकतावादी अवाँगार्द समाज के हाशिए पर छोटी-मोटी कारगुज़ारियाँ करते रहते थे। इसी तरह टैक्टिकल मीडिया ने भी ख़ुद को छोटे-मोटे हस्तक्षेप करने तक सीमित कर लिया है। टैक्टिकल मीडिया अकसर आधुनिक राज्य और औद्योगिक पूंजी के संरचनात्मक तर्क को ही आगे बढ़ाता प्रतीत होता है। यहाँ आकर टैक्टिकल मीडिया एक विरोधाभास का शिकार हो जाता है। उसका लक्ष्य भले ही व्यवस्था को अंदर से तोड़ना हो, लेकिन वह पूंजी के उत्तर-फ़ोर्डवादी प्रवाह में फँस कर अल्पकालिकता को प्रोत्साहन देने लगता है।

यह एक तरह की प्रतिगामिता है कि उत्तर-फ़ोर्डवादी युग में भी टैक्टिकल मीडिया

अल्पकालीनता और टैक्टिक्स की शर्तों पर काम करना चाहता है। चूँकि छिटपुट हमले का मॉडल हमारे दौर की महादशा है, इसलिए टैक्टिकल मीडिया उसी से अपनापा महसूस करता है जिसके विरोध में वह खड़ा है। संगठित नेटवर्कों की अवधारणा का अपना एक रणनीतिक महत्त्व है। टैक्टिकल मीडिया में नमूदार होकर ग़ायब होने की ज़बर्दस्त प्रवृत्ति होती है। उसमें चीज़ें घनीभूत होते-होत तंत्र के वितान में खो जाती हैं। टैक्टिकल मीडिया का आदर्श है थोडी देर के लिए हलचल पैदा करना और मैदान से बाहर हो जाना। टैक्टिकल मीडिया की हालत बहुत कुछ वैसी ही है जैसी गेम इंडस्ट्री में मॉडरों की होती है। दोनों ही व्यवस्था की ख़ामियों पर सही जगह उँगली रखते हैं। लेकिन समस्याओं को बेपर्द करते ही दोनों पतली गली से निकल लेते हैं। ज़ाहिर है कि पूंजी के लिए इससे ज़्यादा ख़ुशी की बात और कोई नहीं हो सकती। टैक्टिकल मीडिया और नर्ड-मॉडर बैठे-बिठाए उसका संकट हल कर जाता है।

लेकिन हमें मान लेना चाहिए कि संगठित नेटवर्कों के उभार का मतलब सूचना युद्ध का बिगुल बज चुका है। फ़िलहाल यह युद्ध 'स्थायित्व' के मुद्दे के इर्द-गिर्द लड़ा जा रहा है। नव-उदारवादी सरकारें और संस्थाएँ ख़ुद को मुश्किल क्षेत्रों की ज़िम्मेदारी से बचाना चाहती हैं। संगठित नेटवर्कों के लिए ऐसे मॉडलों को विकसित करना बेहद ज़रूरी हो गया है जो ऐक्शन अपडेट की नवीनतम योजना से बाहर जाकर काम कर सकें हों। इसके बाद इन मॉडलों को सदस्य राज्यों और 'नागरिक हितैषी' व्यवसाय द्वारा समाहित कर लिया जाता है।

संगठित नेटवर्क और स्थापित संस्थाओं के बीच एक क़िस्म की प्रतिस्पर्द्धा चलती रहती है। यह प्रतिस्पर्धा ब्रैंड और पहचान निर्माण के स्तर पर देखने को मिलती है। लेकिन संगठित नेटवर्क मुख्यत: ज्ञान के उत्पादन और अवधारणाओं के विकास के कार्य स्थल हैं। आजकल ज़्यादातर संस्थाएँ नेटवर्कों के आधार पर ही काम कर पा रही हैं। या दूसरे शब्दों में कहें तो उनकी कार्यशीलता नेटवर्कों पर ही टिकी है। ऐसा नहीं है कि ये संस्थाएँ सिर्फ़ दिखायी देती हैं, वापस कुछ देना नहीं चाहतीं; बल्कि सच्चाई यह है कि उनके पास देने के लिए कुछ है ही नहीं, और यही वह बिन्दु है जहाँ आभासी नेटवर्कों की वास्तविक क्षमता विद्यमान होती है। बजट, अनुदान, निवेश और नौकरी आदि देने के मामलों में अभी भी आभासी नेटवर्क को बातचीत का हिस्सा नहीं बनाया जाता। ज़्यादा से ज़्यादा उन्हें समकक्ष लोगों के बीच प्रेरणा का स्रोत भर माना जाता है।

संगठित नेटवर्क एक संकर संरचना है, इसका एक हिस्सा टैक्टिकल मीडिया की तरह काम करता है और दूसरा हिस्सा संस्था की तरह और इन दोनों ही हिस्सों में कुछ लाभ हैं। संगठित नेटवर्क में जो बात साफ़ तौर पर देखी जा सकती है, वह यह है कि इसका सांस्थानिक विस्तार संप्रेषण के सामाजिक-तकनीकी ढाँचे में अंतर्निहित है या उसके अंदर है। इसका मतलब यह है कि संगठित नेटवर्क के निर्माण का कोई सार्वभौमिक सूत्र नहीं होता। नेटवर्कों के लिए 'अन्तर्राष्ट्रीयतावाद' जैसी चीज़ नहीं होती। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कि संगठित नेटवर्क नव-उदारतावाद की कोख से जन्मे हैं और जिस प्रकार आधुनिकता के असमान विकास के चलते पूरब से लेकर पश्चिम तक समाज और राष्ट्र के स्तर पर बड़े अलग-अलग तरह के विकास हुए हैं, वैसे ही इस नव उदारवादी दौर में पूंजी भिन्न-भिन्न रूपों में सामने आती है। मुक्त व्यपार समझौते के साथ विविध परिस्थितियों की जो बात कही जाती है वह पूंजी के इन विभिन्न रूपों का ही एक उदाहरण है। विश्लेषण की दृष्टि से हम पूंजी को कैसे समझते हैं, यह बात पूंजी के अपने कर्म से तय होती है। और बेहतर ढंग से कहा जाए तो पूंजी की समझ इस बात से तय होती है कि हमने उसका लक्ष्य तय करते समय किन-किन चीज़ों पर विचार किया है, और उनका दायरा क्या है।

अन्तत: संगठित नेटवर्क एक दिन नेटवर्कों पर आधारित संस्थाओं का प्रतिबिम्ब बनकर उभरेंगे। लेकिन अभी हम उस मुक़ाम पर नहीं पहुँचे हैं। संश्लेषण इतना आसान होगा। मोटे तौर पर कहा जाए

तो आभासी नेटवर्कों की अनौपचारिकता और संस्थाओं की औपचारिकता में एक प्रकार का 'संगम' संभव हो सकता है। लेकिन यह प्रक्रिया समरस या शांतिपूर्ण नहीं होगी। नेटवर्कों और संस्थाओं के बीच हमारी आँखों के ऐन सामने टकराव होने लगे हैं। इस तोड़फोड़ के मलबे हमें हर दिशा में दिखायी देते हैं, बस बात इतनी है कि हम सही जगह देख रहे हैं या नहीं। एक अर्थ में ऐसा भी कहा जा सकता है कि नेटवर्कों पर आधारित जनसमुद्र इस प्रक्रिया के हिस्से के रूप में बनता और बिगड़ता रहता है। मौजूदा परिस्थितियों के बीच यह मानना कि नेटवर्क इस युद्ध में विजयी हो जाएँगे, नादानी होगी। यही कारण है कि नेटवर्कों को अपने संगठन के लिए ख़ास तरह के रूप तैयार करने की ज़रूरत है। इस संदर्भ में नेटवर्कों को तीन पहलुओं- जवाबदेही, टिकाऊपन और व्यापकीकरण से गुज़रना होगा।

आइए, बात इस सवाल से शुरू की जाए कि नेटवर्क आन्तरिक लोकतंत्र को किस प्रकार और किस रूप में दर्शाते हैं या वे किस सीमा तक इस आन्तरिक लोकतंत्र की नुमाइंदगी करते हैं। औपचारिक संगठनों के सदस्य होते हैं जबकि ज़्यादातर ऑनलाइन उपक्रमों में सदस्य जैसी कोई बात नहीं होती। हमें इस सच्चाई को स्वीकार करना चाहिए। नेटवर्क प्रतिनिधित्व के पारम्परिक रूपों का विध्वंस करते हैं। दरअसल इसी बिन्दु से यह सवाल पैदा होता है कि क्या 'सन 2004 में हुए अमेरिकी चुनावों में चिट्ठों या ब्लॉग्स की कोई भूमिका थी?' जहाँ तक इस चिट्ठा-जगत के प्रभाव की बात है उसके बारे में सिर्फ़ इतना ही कहा जा सकता है कि उससे मुट्ठी भर टेलीविज़न और अख़बारों के सम्पादक ही मुतास्सिर हुए थे। नेट और शब्द को व्यापक स्तर पर फैलाने के बजाय नेट हर क़िस्म की सत्ता पर ज़्यादा सवाल खड़े करता है। यही कारण था कि इन चुनावों में वह किसी भी उम्मीदवार की लोकप्रियता में इज़ाफ़ा नहीं कर सका। जो नेटवर्क ज़्यादा ऊँचे स्तर पर काम करते हैं वे सफल नहीं होंगे। आप देरिदा के बारे में जो चाहे सोचें परन्तु नेटवर्क समाज का विखंडन करते हैं। महत्त्वपूर्ण बात चीज़ों के बीच एक गहरा संबंध होता है न कि एक बाहरी प्रतीकात्मक तख़्ता पलट। अगर नेटवर्क के सामने कोई उद्देश्य है तो इस उद्देश्य को वर्चस्व के समानान्तर खड़ा करना होगा। और यह तभी किया जा सकता है जब तकनीकी-सामाजिक नवाचारों की नयी लहर के अलमबरदार इस उद्देश्य के बुनियादी संकल्पों का लगातार परीक्षण करते रहें। यहाँ हम जिन मुद्दों की बात कर रहे हैं उन्हें 'सामुदायिक सूचना तकनीकी' के क्षेत्र में रख कर देखा जा सकता है। सामुदायिक सूचना तकनीकी का उभार शोध और परियोजना के क्षेत्रों में इन मुद्दों से जूझने की मिसाल के रूप में पढ़ा जा सकता है। सामुदायिक सूचना तकनीकी परियोजना को नीचे या ज़मीनी स्तर से उभारने व बनाने में यक़ीन करती है लेकिन इसके बावजूद इस शोध क्षेत्र का एक बड़ा सरोकार ई-लोकतंत्र से जुड़े मुद्दे हैं। यानी इसी शोध क्षेत्र की ऊर्जा का एक काफ़ी बड़ा हिस्सा ई-लोकतंत्र से जुड़े मुद्दों पर ख़र्च होता है। हमें इस भ्रम से पिंड छुड़ा लेना चाहिए कि प्रतिनिधित्व पर आधारित लोकतंत्र के मिथकों को नेटवर्कों पर आधारित माहौल में स्थानान्तरित किया जा सकता है या इस माहौल में लोकतंत्र की संभावना और उसकी क्षमता का दोहन किया जा सकता है। ऐसा होने वाला नहीं है। आख़िरकार विश्व सूचना समाज सम्मेलन जैसे प्रयासों से लाभ उठाने वाले ज़्यादातर लोग ऐसे हैं जो संपर्क, अनुदान व भाषण में पारंगत हैं। कहने की ज़रूरत नहीं है कि इस प्रकार के प्रयासों का लाभ उन लोगों को क़तई नहीं मिलता जिनकी इस तरह की प्रक्रिया में तथाकथित नुमाइंदगी की जाती है। नेटवर्क को राजनीति के एक नए तर्क की दरकार है उसके लिए 'वैश्विक नागरिक समाज' की बात करने वाले चन्द ग़ैर-सरकारी संगठनों के जमावड़े नाकाफ़ी हैं।

लोग-बाग चाहें जितनी बार इस बात को दुहराएँ या नेटवर्कों से असफल लोकतंत्र की असफल संस्थाओं का अनुकरण करने की अपेक्षा करें, हक़ीक़त यही है कि नेटवर्क लोकतंत्र की प्रतिनिधि संस्थाएँ नहीं हैं। इसके बजाय नेटवर्क निर्णय प्रक्रिया के उत्तर-लोकतांत्रिक मॉडल की खोज पर ज़्यादा ज़ोर देते हैं। ग़ौरतलब है कि इस तरह के मॉडल प्रातिनिधित्व के क्लासिक रूपों और तत्संबंधित अस्मितागत नीतियों के ख़तरों से बचाने का काम करते हैं। ग़ैर-प्रतिनिधिक लोकतंत्र का उभरता हुआ मुद्दा सहमति की प्रक्रिया के बजाय उसके परवर्ती प्रभावों से ज़्यादा वाबस्ता है। निश्चय ही शासन के प्रक्रिया-केन्द्रित रूपों में एक आकर्षण तो है। लेकिन अंततः यह प्रक्रिया-आधारित मॉडल भी उतने ही टिकाऊ है जितनी 1970 के दशक की मिट्टी से बने दूसरे माधो! प्रक्रिया तभी तक अच्छी तरह काम करती है जब तक कि वो बहुत सारी शक्तियों को नेटवर्क के साथ जोड़े रहती है। लेकिन अहम सवाल फिर भी बना रहता है कि वह कितने समय तक काम करता है? इसका इस्तेमाल ही क्यों किया जाए और साथ ही एक सवाल यह भी उठता है कि बोलने वाला कौन है? और : चिंता ही क्यों की जाए? इस तरह बात साफ़ है कि सामाजिक-तकनीकी जीवन को शक्ल देने वाली महत्त्वपूर्ण शक्तियों पर फ़ोकस डालना ही होगा। दरअसल यही वह बिन्दु है जहाँ संगठित नेटवर्कों की विविधता और उनकी अदृश्य संभावनाएँ मौजूद हैं। विवाद और असहमति को यहाँ एक मानकर चला जा सकता है। लोकतंत्र के तर्कपूर्ण सहमति पर आधारित मॉडल की असफलता से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि सामाजिक राजनीतिक जीवन की ऐसी बुनियादी स्थितियों को ख़त्म नहीं किया जा सकता।

संगठित नेटवर्कों को आइंदा खुद अपनी पाएदारी को लेकर सजग रहना पड़ेगा। नेटवर्क केवल प्रचार पर या हवा बाँधने भर से नहीं चलते हैं। बाहर से देखने में वे अस्थायी लग सकते हैं लेकिन वे टिकने वाली चीज़ है। कुछ स्वतंत्र क़िस्म के नेटवर्क समूह समय से पहले ही थक कर बैठ सकते हैं परन्तु इन नेटवर्कों में संदर्भीकरण की इच्छाशक्ति है जिसे दबाया नहीं जा सकता। किसी ख़ास बिन्दु पर नेटवर्कों की कड़ियाँ टूट सकती हैं, परन्तु इसका मतलब डेटा का ख़त्म हो जाना नहीं है। इसके बावजूद नेटवर्क बेहद नाज़ुक चीज़ है। यह सब कुछ बहुत जाना-पहचाना लग सकता है। लेकिन हमें यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि व्यावहारिकता की नीति काम के पीछे खोज की खुशी और मस्ती की भावना पर आधारित होती है। समय पर पुल बाँधने के लिए कोई न कोई नयी ईजाद कर ली जाएगी और इस चीज़ को संगठित नेटवर्क भी कहा जा सकता है। प्रक्रिया की योजना पर मुस्तैदी से काम करने का वक़्त आ गया है। संगठन की चुनौती के साथ-साथ नेटवर्कों के भीतर आत्म-विध्वंस की प्रवृत्ति सिर उठा रही है। संगठन पर आधारित नेटवर्कों को सामाजिक तकनीकी जटिलताओं के आन्तरिक क्रिया-कलापों के हिसाब से अपनी मूल्य व्यवस्था तैयार करने की चुनौती स्वीकार करनी होगी और ऐसा करना बहुत मुश्किल नहीं है। असल में यहाँ कोई डर है तो सिर्फ़ चीज़ों को दड़बे में क़ैद कर देने का। और इससे निजात मिलने का रास्ता है एक ऐसे आपसी सहयोग पर आधारित मूल्य व्यवस्था का, जो फ़ंड, संस्था के भीतर चलने वाले सत्ता के खेल और अपने क्रिया-कलापों को एक क़दम आगे ले जाने पर उत्पन्न हुई जवाबदेही और पारदर्शिता की माँगों को संभाल सकें।

अब ज़रा पैसों की बात की जाए। संगठित नेटवर्कों को सबसे पहले अपने आभासी घर को व्यवस्थित करना होगा। इस बात का रणनीतिक महत्त्व है कि किसी ग़ैर-लाभकारी इंटरनेट सेवा प्रदाता (आई एस पी) की मदद ली जाए, बैकप लिया जाए, बल्कि किसी और देश से भी वही साइट चलायी जाए। इस मामले में व्यावसायिक सेवाओं जैसे- याहू, हॉट मेल, जियोसिटीज़ या गूगल पर यक़ीन नहीं किया जा सकता। इन सेवाओं की सुरक्षा और गोपनीयता की पोल कई बार खुल चुकी है। हमें डोमेन नेम, ई-मेल पते, क्षमता और बैंडविड्थ जैसी चीज़ों पर आने वाले ख़र्च पर भी विचार करना होगा। ये मामले दूर से देखने पर कितने ही छोटे क्यों न दिखायी पड़ते हों। अकसर विवाद इसलिए भी पैदा होते हैं क्योंकि डोमेन के पासवर्ड और उसका मालिकाना हक़ एक व्यक्ति के हाथ में होते हैं। और जब किसी टकराव

के चलते यह व्यक्ति समूह को छोड़कर जाने का फ़ैसला करता है तो विवाद उठना लाज़िमी हो जाता है। अकसर ऐसी परिस्थितियों में पूरी परियोजना ही टाँय-टाँय फिस्स हो जाती है।

नेटवर्क कभी-भी सौ फ़ीसदी आभासी नहीं होते। किसी न किसी बिन्दु पर वे मौद्रिक अर्थव्यवस्था से जुड़े रहते हैं। संगठित नेटवर्कों की कहानी इसी मोड़ से शुरू होती है। शायद कंपनी का रूप देना यहाँ ज़रूरी होता है। अगर आप अपने नेटवर्क को क़ानूनी पचड़ों में नहीं पड़ने देना चाहते तो आपको यह तय करना होगा कि आप कंपनी न बनाकर कैसी क़ीमत अदा कर रहे हैं। ऑनलाइन गतिविधियों के लिए फ़ंड, बैठकों, सम्पादन, कोडिंग, डिज़ाइन, शोध और प्रकाशन का काम सहयोगी संस्थाओं के माध्यम से निर्देशित किया जा सकता है। यह बात याद रखी जानी चाहिए कि आपकी ऑनलाइन गतिविधियाँ जितना बढ़ती हैं नेटवर्क प्रशासक के लिए भी उतने ही पैसों का जुगाड़ करना पड़ेगा। मुक्त सॉफ़्टवेयर का अंतर्मुखी संसार जो ग़ैरतनख़्वाही ऐच्छिक कार्यकर्ताओं पर आधारित है, वो अपनी परियोजनाओं की कोडिंग के लिए ज़्यादा कारगर होता है। यहाँ यह भी याद रखें कि सांस्कृतिक, कलात्मक और ऐक्टिविज़्म पर आधारित परियोजना इस श्रेणी में नहीं आती। भले राजनीतिक तौर पर सही यही लगे। यही बात सामग्री सम्पादकों और वेब डिज़ाइनरों पर भी लागू होती है। आदर्श रूप में ऑनलाइन परियोजनाओं का सामूहिक आधार काफ़ी पुख़्ता होता है और उनमें आवश्यक कौशल भी होते हैं परन्तु जैसे ही हम शुरुआती स्थिति से आगे बढ़ते हैं तो परियोजना के काम के लिए पैसों का प्रबंध करना पड़ता है, या दूसरे लोगों को वेतन जैसी कोई चीज़ देनी पड़ती है। संगठित नेटवर्कों को इस आर्थिक सच्चाई से जूझना होगा नहीं तो उन्हें हाशिए का शिकार होने से नहीं बचाया जा सकता। फिर चाहे उनका उद्देश्य या नेटवर्क के इस्तेमाल या संवाद की क्षमता कितनी ही ऊँची क्यों न हो। 'अभौतिक श्रम' और 'ग़ैरपायेदारी' के बारे में बात करना लाभदायक है, परन्तु यह सारा आयोजन धन के अभाव में हवाई चिंतन से राजनैतिक कार्यक्रम के बीच की दूरी तय नहीं कर सकता।

अब जरा व्यापकीकरण के उस पहलू पर ध्यान दिया जाए जिस पर अभी तक हमने बहुत कम बातें की हैं। नेटवर्कों के लिए एक स्तर को पार करना क्यों मुश्किल होता है? नेटवर्क के मामले में हमेशा यह प्रवृत्ति रहती है कि वे हज़ारों-हज़ार छोटे-छोटे मुद्दों और संवादों में फँस कर न रह जाएँ। यह बात 'सोशल सॉफ़्टवेयर' ब्लॉग्स - ऑरकुट, फ़्रेंडस्टर और लिंकइन जैसे उन ब्लॉग्स पर भी लागू होती है जिनमें दुनिया भर के लाखों लोग भाग लेते हैं। फ़िलहाल प्रोग्रामरों की स्लैशडॉट जैसी चीज़ें ही ऑनलाइन प्रयोक्ताओं के बीच संवाद आयोजित कर पा रही हैं। इलेक्ट्रॉनिक मेलिंग लिस्ट कुछ हज़ार की संख्या के बाद आगे नहीं बढ़ पातीं। क्योंकि वहाँ पर बातचीत को बहुत नज़दीकी से निर्देशित किया जाता है। एक गंभीर और खुले विचार-विमर्श के लिए पचास से लेकर पाँच सहभागियों की संख्या आदर्श मानी जाती है। नेटवर्क का इस्तेमाल करने वाले जनसमुद्र के लिए इसके क्या निहितार्थ हैं? ऐसे में सवाल यह उठता है कि यह मुद्दा किस हद तक सॉफ़्टवेयर का मुद्दा है। क्या आवश्यक आचार-संहिताएँ या 'प्रोटोकॉल' महिलाओं द्वारा लिखी जाएँ। क्या बड़े स्तर पर ऐसे संवाद की संभावना है जो सार्थक होने के साथ-साथ प्रभावशाली भी हो। क्या नेटवर्क की संस्कृतियाँ बड़ी संस्थाओं को बदल सकती हैं?

**आभार :**

कहने की ज़रूरत नहीं है कि यह लेख कई तरह की ऑनलाइन सहभागिता से उपजा है। नेट टाइम, फ़ाइबर कल्चर, रोर पोस्ट, इकोनक्स, इनकम्युनिकादो और स्पेक्टर जैसी मेलिंग लिस्ट के अलावा फ़िलहाल बन्द हो चुकी डिस्कॉर्डिया जैसे सामूहिक वेब ब्लॉग के प्रति भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ। इस सूची में (मुक्त भागीदारी पर कार्यरत) ट्रैबोर शोल्ज़ और नेड रोज़ीटर जिनके साथ मैं संगठित नेटवर्कों पर काम कर रहा हूँ, भी शामिल हैं। सोएन्के ज़ेहले और फ़्लोरियन श्नाइडर भी संवाद में महत्त्वपूर्ण सहयोगी

रहे हैं। वैचारिक आदान-प्रदान के लिए मैं एमिली रैंडो और नेटवर्क कल्चर संस्थान की सबीना निदेरे का भी शुक्रगुज़ार हूँ। निदेरे की टिप्पणियाँ और संपादकीय सहयोग मेरी शोध परियोजना का आधार स्तंभ रहे हैं। यह लेख मैं अपनी प्रियतमा लिंडा वॉलेस और अपने बेटे काज़िमिर को समर्पित करता हूँ, जिनके साथ मैं यह हलचल-भरी और रोमांचक ज़िन्दगी गुज़ारता हूँ।

(यह लेख उस कार्यरत सैद्धांतिक काम की प्रस्तुति है जो मैंने सन 2004 में आगे बढ़ाया, जिस साल मैंने हॉगस्कूल वॉन एम्सटरडम में लेखक का काम संभाला। सन 2003 के दौरान 'माई फ़र्स्ट रिसेशन' नामक मेरी किताब पूरी हुई और इसके बाद मैंने व्यावहारिक धरातल पर काम करना शुरू किया। इस सिलसिले में सबसे महत्त्वपूर्ण बात थी मेरा ब्रिस्बेन से एम्सटरडम जाना। यहाँ मैंने एच.वी.ए. स्थित इन्टरएक्टिव मीडिया के निदेशक एमिली रेन्डो की सहायता से नेटवर्क संस्कृति संस्थान के नक़्श गढ़ने शुरू किए और 'डिजिटल पब्लिक डोमेन' से संबंधित एक शोध कार्यक्रम की नींव रखी - इसी प्रक्रिया में धीरे-धीरे नेटवर्क संस्कृति का संस्थान आकार लेने लगा। नेटवर्क संस्कृति के सिद्धांत की बात फ़िलहाल करना जल्दबाज़ी होगी। इसलिए संस्थान के शोध कार्य को हस्तक्षेप, एक्शन रिसर्च, और नेट के बारे में कुछ माथापच्ची और अन्ततः कुछ सैद्धांतिक अवधारणाओं के एक सिलसिले के रूप में देखा जाना चाहिए।)

**संदर्भ :**


कैस्टल्स, एम. *दि इन्फ़ॉर्मेशन ऐज,* वॉल्यूम 1.. द राइज़ ऑफ़ दि नेटवर्क सोसाइटी, ऑक्सफ़र्ड: ब्लैकवेल पब्लिशर्स इंकए (1996).

डेब्रे, आर. *मीडिया मैनिफ़ेटोज : ऑन द टेक्नॉल्जिकल ट्रांसमिशन ऑफ़ कल्चरल फ़ॉर्म्स,* लंदन ऐंड न्यूयॉर्क : वर्सो, (1996).

फ़्लोरिडा, आर. द *राइज़ ऑफ़ द क्रिएटिव क्लास,* न्यूयार्क : बेसिक बुक्स, (2002).

हॉर्ड, एम. ऐंड नेग्री, ए. *एम्पायर,* कैम्ब्रिज (मास) : हार्वर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, (2000).

हॉर्ड, एम. ऐंड नेग्री, *ए. मल्टीट्यूड : वार ऐंड डेमोक्रेसी इन दि एज ऑफ़ एम्पायर,* न्यूयॉर्क, द पेंग्विन प्रेस, (2004).

हॉफ़र ई. द *ट्रू बिलीवर,* न्यूयॉर्क, हार्पर ऐंड रॉ, (1951).

लोविंक, जी. *डार्क फ़ाइबर.* कैम्ब्रिज (मास.) : एमआइटी प्रेस, (2002).

लोविंक, जी. *माई फ़र्स्ट रिसेशन : क्रिटिकल इंटरनेट कल्चर ऐंड ट्रांजिशन,* रॉटरडम: विटू/एनएआई, (2003)

मानोविच, एल. द *लैंग्वेज ऑफ़ न्यू मीडिया,* कैम्ब्रिज (मास.) : एमआइटी प्रेस, (2001).

शैविरो, एस. *कनेक्टेड ऑर व्हॉट इट मीन्स टू लिव इन ए नेटवर्क्ड सोसाइटी,* मिनीसोटा, युनिवर्सिटी ऑफ़ मिनीसोटा प्रेस, (2003).

टैरेनोवा, टी. *नेटवर्क कल्चर्स,* लंदन/एन आर्बर : प्लूटो प्रेस, (2004).

विरनो, पी. *ए ग्रैमर ऑफ़ दि मल्टीट्यूड,* कैम्ब्रिज (मास.) : सेमियो टैक्स्ट, (2004).

यूडिस, जी. द *एक्सपीडिएन्सी ऑफ़ कल्चर,* डरहम ऐंड लंदन : ड्यूक युनिवर्सिटी प्रेस, (2003).


**ऑनलाइन स्रोत**

http://amsterdam.nettime.org/lists-archives/nettime-l-0212/msg00057.html
http://thing.desk.nl/bilwet
www.aoir.org.
www.fibreculture.org, : list archive
www.freecooperation.org
www.internetworldstats.com/stats.htm
www.nettime.org
www.networkcultures.org
www.netzwissenschaft.de/sem/pool.htm

नोट

1. लेख के शीर्षक 'नेटवर्किंग इज नेटवर्किंग' का अभिप्राय यह है कि चैटिंग का चक्कर यूज़र को ज़रूरी काम नहीं करने देता। यह जॉर्ज सोरेस की देन है। सोरेस करोड़पति आदमी थे। वह एक दान संस्था शुरू करना चाह रहे थे परंतु संस्था के काम को आगे बढ़ाने के लिए सांस्कृतिक नेटवर्क बनाने की बात उन्हें हजम नहीं होती थी।

2.गीयर्त लोविंक, *माय फ़र्स्ट रिसेशन - क्रिटिकल इंटरनेट कल्चर इन ट्रांजिशन*, रॉटरडम: वी2/एनएआइ, (2003).

3. www. networkculture.org (नेटवर्क संस्कृति संस्थान की वेबसाइट तथा वेबब्लॉग) डच भाषा में एक व्याख्यान श्रृंखला के अलावा संस्थान ने इंटरएक्टिव मीडिया प्रोग्रैम के सैद्धांतिक पाठ्यक्रम की रूपरेखा तैयार करने के लिए 2005 में पाँच अन्तर्राष्ट्रीय बैठकों का आयोजन भी किया था। इन बैठकों में निम्न विषयों पर विचार किया गया था - वेब डिज़ाइन के क्षेत्र में एक दशक की गतिविधियाँ, जर्मनी में मीडिया सिद्धांत, विकास के क्षेत्र में इंटरनेट संस्कृति के वैकल्पिक रूप, नेपट्रान की कला और राजनीति तथा सार्वजनिक स्तर पर साइबर कला का आयोजन।

4. जॉर्ज यूडिस द *एक्सपीडिएन्सी ऑफ़ कल्चर*, डरहम व लंदन: ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस, (2003).

5. रिर्चाड फ्लोरिडा, द राइज ऑफ़ द क्रिएटिव क्लास. न्यूयॉर्क: बेसिक बुक्स, (2002).

6. नेड रोजिटर तथा डैनी बट ने रचनात्मक उद्योग पर बेहतरीन काम किया है। देखें http://amsterdam.nettime.org/lists- archive/nettime-l-0212/msg00057.html. इसके अलावा रचनात्मक उद्योग व मीडिया के तुलनात्मक सिद्धांतों व उनकी सीमाओं के बारे में जानने के लिए नेड रोजिटर का (2004) कनाडाई जर्नल ऑफ़ कल्चरल स्टडीज़ (ग्यारहवाँ अंक, स्प्रिंग 2004, टोरांटो, कनाडा) में प्रकाशित लेख भी देखा जा सकता है।

7. www. precairforum.nl.

8. www.internetworldstats.com/stats.htm.

9. जॉर्ज यूडिस द *एक्सपीडिएन्सी ऑफ़ कल्चर*, डरहम व लंदन: ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 28, (2003).

10. एलडैम, पृ.28

11. देखें इंटरनेट शोधकर्ताओं के संगठन की वेबसाइट www.aoir.org

12. 'द लैंग्वेज ऑफ़ न्य मीडिया' मीडिया सिद्धांतकार लेव मैनोविच की पुस्तक का शीर्षक है। लेव मैनोविच, द *लैंग्वेज ऑफ़ न्यू मीडिया*, कैंब्रिज(मैस.)एमआईटी प्रेस, (2004),

13. माइकल हार्ड एवम् एन्तोनियो नेग्री, मल्टीट्यूड: वार ऐंड डेमोक्रेसी इन द एज ऑफ़ एम्पायर. द पेंग्विन प्रेस, (2004)

14. वही, पृ. 14

15. सी आइ ए के पूर्व प्रमुख जॉर्ज जे टेनेट का मानना था कि अमेरिका के सुरक्षा कवच में इंटरनेट सबसे कमज़ोर कड़ी है। उनके अनुसार यह एक ऐसा औज़ार है जिसके ज़रिए अमेरिकी सुरक्षा-तंत्र को आसानी से भेदा जा सकता है। वाशिंगटन में आयोजित एक सुरक्षा सम्मेलन में बोलते हुए टेनेट ने कहा था कि 'आज के इस समय में इंटरनेट जैसी खुली और मुक्त तकनीक पर नियंत्रण लगाने की बात सोचना विवादों को निमंत्रण देना है परंतु पश्चिम की बेलगाम दुनिया को इसे कठोर अनुशासन और नियंत्रण के दायरे में लाना ही होगा।' टेनेट कॉल्स फॉर इंटरनेट सिक्योरिटी. शॉन वाटरमैन, यू पी आई रिर्पोट, दिसंबर 2, 2004

16. माइकल हार्ड एवं एन्तोनियो नेग्री, मल्टीट्यूड: वार ऐंड डेमोक्रेसी इन द एज

ऑफ़ एम्पायर, द पेंग्विन प्रेस, पृ.142, (2004).

17. वही पृ. 58

18 वही पृ. 83

19. आभासी बुद्धिजीवी की भूमिका के बारे में मोर की उद्धृत टिप्पणी, गीयर्त लोविंक, डार्क फाइबर, कैंब्रिज(मास.), एमआईटी प्रैस, पृ.30-40, (2002).

20. हॉफ़र, ई द ट्रू *बिलिवर*. हार्पर ऐंड रॉ, (1951). इसके अलावा इस लेखक की पुस्तक डार्क फ़ाइबर में संकलित अध्याय 'मॉस साइकॉल्जी ऑफ़ नेट' भी देखें

21. 'सूचना युग की राजनीति' की परिचयात्मक रूपरेखा टी टेरेनोवा (2004)की पुस्तक *नेटवर्क कल्चर*, लंदन/ एन ऑरबर, प्लूटो प्रेस में देखी जा सकती है। इस संदर्भ में स्टीवन शैविरो (2003) की पुस्तक *कनेक्टेड, ऑर व्हाट इट मीन्स टू लिव इन ए नेटवर्क्ड सोसायटी*, मिनीपोलिस: यूनिवर्सिटी ऑफ़ मिनीसोटा प्रेस निराश करती है। शैविरो नेटवर्क संस्कृतियों पर विचार तो करते हैं परंतु नजदीक से देखने पर पता चलता है कि उनका ज़्यादा ज़ोर हॉलीवुड में बनने वाली नवें दशक की विज्ञान आधारित फिल्मों पर है। शैविरो इंटरनेट के स्पेस में मौजूद वास्तविक सामाजिक अन्तर्क्रियाओं और हॉलीवुड की साइबर कल्पनाओं के आपसी संबंध को स्पष्ट नहीं कर पाते। इस क्षेत्र में काम करने वाले साहित्यिक विद्वानों की यह एक आम दिक्कत है।

22. मेलिंग लिस्ट की आर्काइव के लिए देखें www.freecooperation.org. इस वेबसाइट से आयोजन के समय जारी किए गए एक निशुल्क अख़बार की पीडीएफ़ फ़ाइल को डाउनलोड भी किया जा सकता है।

23. नेट टाइम, *साइंस फ़िक्शन फ़ॉर द मल्टीट्यूड*, www.nettime.org, जून, 2003.

24. विरनो, पी.ए *ग्रामर ऑफ द मल्टीट्यूड*, कैंब्रिज(मास.) सेमियोटेक्स्ट, 2004.

25. इस बात की तुलना मल्टीट्यूड (2004) में प्रस्तुत संयुक्त उपक्रम की अवधारणा से करें: 'प्रतिभा हमेशा समूह के स्तर पर ज़्यादा निखरती है। मुक्त स्रोत तथा सहयोग आधारित कार्यक्रमों से कभी भी प्रतिभा और ऊर्जा का अपव्यय नहीं होता। सही बात तो यह है कि ऐसे में बेहतर काम होता है। समूहगत लोकतंत्र को समझने का एक तरीका यह है कि समाज के स्रोतों को सबके लिए खुला रखा

जाए ताकि समाज की समस्याओं और बेहतर सामाजिक कार्यक्रम बनाने का काम सामूहिक स्तर पर किया जा सके।' (मल्टीट्यूड, पेंग्विन प्रेस 2004, पृ. 340)

26. http://thing.desk.nl/bilwet. पर एडिलक्नो का ऑनलाइन आर्काइव, डच, अंग्रेज़ी तथा जर्मन - तीनों भाषाओं में उपलब्ध है।

27. यह बीसवीं सदी का एक महत्त्वपूर्ण वैचारिक दृष्टिकोण है जिसके तहत राजनीति और सौन्दर्यशास्त्र के सवालों को इतिहास-निर्माण के एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में रखकर देखा जाता है।

28. देखें फाइबर मेलिंग लिस्ट पर लिस्ट के संचालन और नियंत्रण के संबंध में होने वाला विचार-विमर्श, नवंबर-दिसंबर, www.fibreculture.org, 2004, इसके पश्चात लिस्ट का आर्काइव देखें।

29. रेजिस डेबरे, *मीडिया मैनिफ़ैस्टो: ऑन द टेक्नॉल्जिकल ट्रांसमिशन ऑफ़ कल्चरल फॉर्म्स,* लंदन व न्यूयॉर्क: वर्सो, (1996).

30. गीयर्त लोविंक की पुस्तक का परिचय और उपसंहार देखें। *माय फ़र्स्ट रिसेशन.* राटरडम: वी2/एनएआइ, (2003). संगठित नेटवर्को के सिद्धांत को इस पुस्तक की पश्च-प्रक्रिया के रूप में देखा जाना चाहिए।

31. माइकेल गर्स्टीन तथा अन्य विद्वानों द्वारा सुझाए गए कम्प्यूटर विज्ञान और मानविकी के संधि-स्थल का एक नमूना। इन विद्वानों के लेखों को निम्नलिखित वेबसाइट पर देखा जा सकता है- www.netzwissenschaft.de/sem/pool.htm.